ऋषि प्रसाद

द्विमासिक

नास्ति ध्यानसमं तीर्थम् । नास्ति ध्यानसमं दानम् ।
नास्ति ध्यानसमं तपः । नास्ति ध्यानसमो यज्ञः ।
तस्मात् ध्यानं समाचरेत् ॥
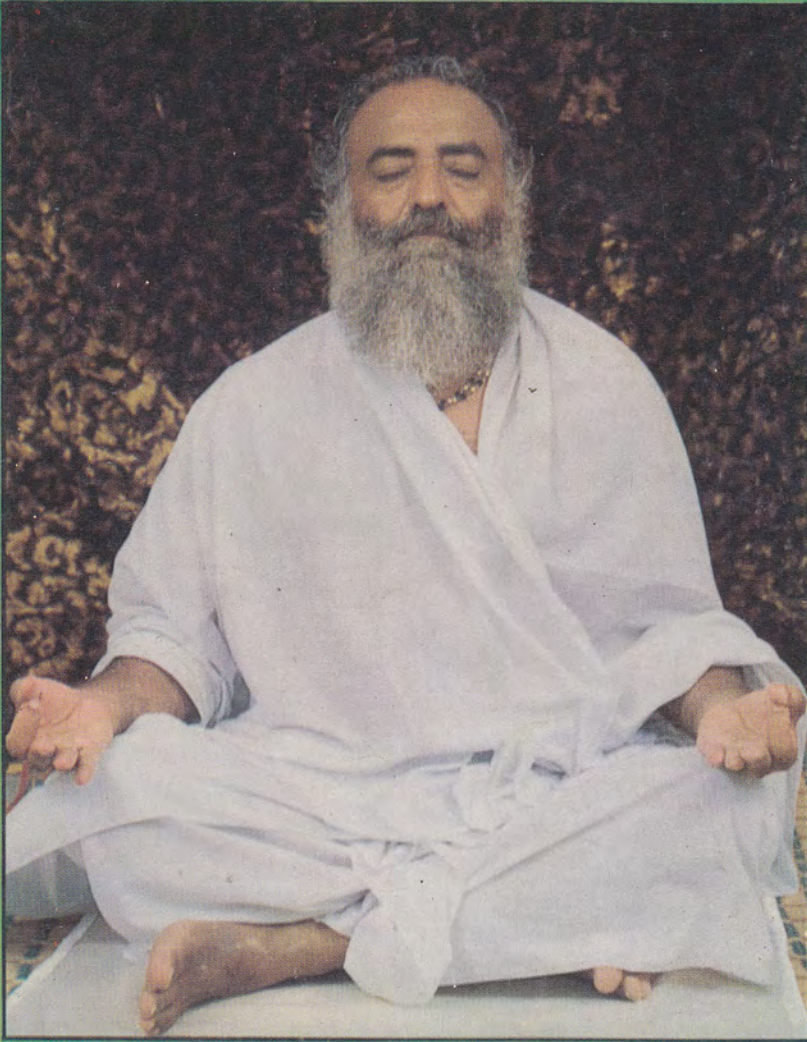
पूज्यपाद संत श्री आसारामजी महाराज

वर्ष : ४
अंक : २०
सितम्बर-अक्तूबर १९९३

वर्ष : ४
अंक : २०
सितम्बर-अक्तूबर १९९३

शुल्क वार्षिक : रू. २५/-
आजीवन : रू. २५०/-
परदेश में वार्षिक : US$ १५ (डॉलर)
आजीवन : US$ १५० (डॉलर)

कार्यालय :
'ऋषि प्रसाद'
श्री योग वेदान्त सेवा समिति
संत श्री आसारामजी आश्रम
साबरमती, अहमदाबाद-३८० ००५.
फोन : ४८६३१०, ४८६७०२

परदेश में शुल्क भरने का पता :
International Yoga Vedanta Seva Samiti
8 Williams Crest,
Park Ridge, N. J. 07656 U.S.A.
Phone (201) - 930 - 9195

टाईपसेटींग : पूजा लेसर पॉईन्ट

प्रकाशक और मुद्रक : श्री के. आर. पटेल
श्री योग वेदान्त सेवा समिति,
संत श्री आसारामजी आश्रम, मोटेरा, साबरमती,
अहमदाबाद-३८० ००५ ने
अंकुर ऑफसेट, गोमतीपुर, अहमदाबाद में
छपाकर प्रकाशित किया।

अनुक्रम

'ऋषि प्रसाद' हर दो महीने में ९ वीं तारीख को प्रकाशित होता है।

कार्यालय के साथ किसी भी प्रकार का पत्रव्यवहार करते समय अपना स्थायी सदस्य क्रमांक अवश्य बतायें।

इस अभीप्सा से कोई अलिप्त नहीं है कि हृदय में शांति, आनंद, प्रसन्नता, प्रेम सदा बना रहे। परंतु उसके राह पर वे ही चल पाते हैं जो दुन्यावी आकर्षण, वैभव, विलास, मोहमाया से मुक्त जीवनपथ पर कदम भरते हैं। वे बड़े सद्भाग्यशाली हैं जिन्हें उस मार्ग पर हाथ पकड़कर कदम भरवानेवाले कोई राहबर मिल जाते हैं । जिसकी जीवननैया को पूज्यपाद गुरुदेव जैसे मल्लाह की शरण मिल जाती है वह निश्चिंत हो जाता है।

आज कइयों के इस अनुपम सौभाग्य का उदय हुआ है। वे पूज्यश्री के पावन आत्म-प्रसाद को आत्मसात् करने में जुट गये हैं। यहाँ प्रांतीयता, जातीयता, वय-मर्यादा का कोई बंधन नहीं है। सबके लिए खुला है देखो सांईं का दरबार। उन्होंने गुजरात या भारत ही नहीं वरन् दरियापार के देशों को भी अपनी महिमामय जीवन उद्धारक वाणी से अभिमंत्रित किया है। जहाँ जहाँ पूज्यश्री ने आध्यात्मिक लोक-उत्थान हेतु गमन किया वहाँ के लोगों में जागृति की एक लहर आ गयी। उनमें न केवल श्रद्धा ही जाग्रत हुई वरन् भारतीय संस्कृति, अध्यात्मविद्या एवं साधनामार्ग के लिए भी हृदय में बड़े आदर का आविर्भाव हुआ।

पूज्यश्री ने होंगकोंग, बेन्कॉक, ताइवान, सिंगापुर, इन्डोनेशिया आदि देशों में ध्यान, कीर्तन, सत्संग के माध्यम से कइयों के जीवन में परमात्मप्रेम की प्यास जगाई। अग्नि एशिया के १८ दिन के प्रवास में कइयों के जीवन में भगवद्रंग लगा, कई नास्तिकों के जीवन बदले और कितने ही तो भारतीय संस्कृति की महिमामय गौरवगाथा सम पूज्यपाद श्री गुरुदेव के दर्शन को ही अपने भाग्य का सूर्योदय समझकर सत्संग, ध्यान, कीर्तन में झूम उठे।

अग्नि एशिया के प्रवास के बाद पूज्यश्रीने वर्ल्ड रीलीजीयस पार्लामेन्ट में २८ अगस्त से ४ सितम्बर तक अपना दिव्य उद्बोधन किया। जीवन की एक वास्तविक मांग का, जीवन की बहुमूल्यता और उसके सदुपयोग के मार्ग का प्रकाशन दुनिया के लोगों के सामने हुआ।

भारतीय संस्कृति ने जगत को क्या दिया है, दुनिया के देशों ने भारत का कितना लाभ उठाया है और आगे भी उठाता रहेगा उसका विशद वर्णन पूज्यश्री ने वहाँ किया। सब धन्य थे। सब आह्लादित, आनंदित और मस्ती में झूम चुके थे इन अगम निगम के ओलिया के प्रवचन में।

हम पूज्यश्री की जीवनलीला की गौरवगाथा समान जीवन पथ पर बढ़ने की मनोकामना करते हुए संकल्प करें कि जिस मार्ग को उन्होंने हमारे लिए प्रदर्शित किया है उस पर कदम बढ़ाते जायें और शीघ्रातिशीघ्र परम लक्ष्य को प्राप्त कर लें।

आप भी कदम बढ़ाते जायें और समाज में भी इनके पावन प्रसाद को वितरित करने का पुण्य लाभ करें।

तू है आर्यवंशी ऋषिकुल का बालक।
प्रतापी यशस्वी सदा दीन पालक।
तू संदेश सत्गुरु का सुनाता चला जा।
कदम अपना आगे बढ़ाता चला जा॥

- श्री योग वेदान्त सेवा समिति
अहमदाबाद आश्रम

जन्माष्टमी पर पूज्यश्री का तात्त्विक प्रवचन

'वासं करोति इति वासुः।' जो सब में बस रहा हो, वास कर रहा हो उस सच्चिदानंद परमात्मा का नाम है वासुदेव।

आज भगवान वासुदेव का प्रागट्य महोत्सव है। भगवान वासुदेव अट्ठाईसवीं चतुर्युगी के द्वापर युग में प्रगट हुए हैं। वे अजन्मा हैं, अच्युत हैं, अकाल हैं, काल की सीमा में नहीं आते। वे काल के भी काल हैं। अखूट ऐश्वर्य, अनुपम माधुर्य और असीम प्रेम से परिपूर्ण हैं भगवान वासुदेव।

जो अवतार रहित है उसका अवतार मनाया जा रहा है, जो जन्मरहित है उसका जन्म मनाया जा रहा है। जो काल से परे है, उसे काल की सीमा में लाकर उत्सव मनाया जा रहा है। जो सबमें बस रहा है, सब जिसमें बस रहे हैं उसका जन्मोत्सव मनाया जा रहा है। 'अकालमूरत' को समय में लाया जा रहा है।

जो आदमी जैसा होता है उसकी दृष्टि और चेष्टा भी वैसी ही होती है। मनुष्य काल के प्रभाव में है और जन्मता-मरता है इसलिए उस अकाल का, अजन्मा का जन्म-महोत्सव मनाता है।

जब-जब समाज अति व्यवहारी, बाह्य स्वार्थ से आक्रांत होता है, तब-तब निष्कामता, प्रेम, माधुर्य, सौन्दर्य का स्वाद चखाते हुए समाज की उन्नति करने के लिए जो अवतरण होता है उसमें भगवान श्रीराम मर्यादा अवतार हैं, नृसिंह आवेश अवतार हैं। द्रौपदी की साड़ियाँ खींची जा रही थीं उस समय भगवान का प्रवेश अवतार था। परन्तु कृष्णावतार प्रवेश अवतार नहीं है, आवेश अवतार भी नहीं है, मर्यादा अवतार भी नहीं है। वे तो लीलावतार हैं, पूर्णावतार हैं, माधुर्य अवतार हैं, ऐश्वर्य अवतार हैं, प्रेमावतार हैं। भगवान का माधुर्य, ऐश्वर्य, प्रेमयुक्त वर्णन कृष्णावतार में ही पाया जाता है।

रामावतार में दास्य भक्ति की बात है परन्तु कृष्णावतार में सख्य भक्ति की बात है। श्रीकृष्ण को या तो सखा दिखता है या वात्सल्य बरसाने वाली माँ दिखती है या अपने मित्र-प्रेमी, ग्वाल-गोपियाँ दिखती हैं। जो प्रेमावतार है, उसे प्रेम ही प्रेम, आनंद ही आनंद दिखता है। जो अकाल है उसे काल में लाकर, जो अजन्मा है उसे जन्म में लाकर, हम अपना जंन्म सँवारकर, अजन्मा तत्त्व का साक्षात्कार करने को जा रहे हैं।

रोहिणी नक्षत्र में, सावन मास के कृष्णपक्ष की अष्टमी के दिन कंस की जेल में श्रीकृष्ण का जन्म हुआ है। कृष्ण पक्ष है, अंधेरी रात है। अंधेरी रात को ही उस प्रकाश की आवश्यकता है।

वर्णन आया है कि जब भगवान अवतरित हुए तब जेल के दरवाजे खुल गये। पहरेदारों को नींद आ गयी। रोकने-टोकने और विघ्न डालनेवाले सब निद्राधीन हो गये। जन्म हुआ है जेल में, एकांत में, वसुदेव-देवकी के यहाँ और लालन-पालन होता है नंद-यशोदा के यहाँ। ब्रह्मसुख का प्रागट्य एक जगह पर होता है और उसका पोषण दूसरी जगह पर होता है। श्रीकृष्ण का प्रागट्य देवकी के यहाँ हुआ है परन्तु पोषण यशोदा माँ के वहाँ होता है। अर्थात् जब श्रीकृष्ण-जन्म

> जब भगवान अवतरित हुए तब जेल के दरवाजे खुल गये। पहरेदारों को नींद आ गयी। रोकने-टोकने और विघ्न डालनेवाले सब निद्राधीन हो गये।

> जब आत्मसुख का प्रागट्य होता है तब इन्द्रियाँ और मन ये सब सो जाने चाहिए, शान्त हो जाने चाहिए। जब इन्द्रियाँ और मन शान्त हो जाते हैं तब बंधन के दरवाजे खुल जाते हैं।

होता है, उस आत्मसुख का प्रागट्य होता है तब इन्द्रियाँ और मन ये सब सो जाने चाहिए, शान्त हो जाने चाहिए। जब इन्द्रियाँ और मन शान्त हो जाते हैं तब बंधन के दरवाजे खुल जाते हैं। 'मैं' और 'मेरे' की भावनाएँ खत्म हो जाती हैं। जब इन्द्रियाँ सतर्क होती हैं, मन चंचल होता है तब 'मैं' और 'मेरा' बनता है। जब इन्द्रियाँ शान्त हो जाती हैं, मन विश्रान्ति पाता है, तब 'मैं' और 'मेरा' नहीं रहता।

भगवान का प्रागट्य हुआ है। वसुदेव भगवान को उठाकर लिए जा रहे हैं, यशोदा के घर। आनंद का प्रागट्य और आनंद के पोषण के बीच, आनंद को देखकर आनंदित होने वाली यमुना की कथा आती है। यमुनाजी सोचती हैं कि वे आनंदस्वरूप अकाल पुरुष आज साकार ब्रह्म होकर आये हैं। मैं उनके चरण छूने के लिए बढ़ूँ तो सही परन्तु वसुदेवजी डूब गये तो? वसुदेवजी डूब जायेंगे तो मेरे पर कलंक लगेगा कि आनंद को उठाये लिये जाने वाले को कैसे डुबाया? अगर ऊपर नहीं बढ़ती हूँ तो चरण-स्पर्श कैसे हो?

यमुनाजी कभी तरंगित होती हैं तो कभी नीचे उतरती हैं। वसुदेवजी को लगता है कि अभी डूबे - अभी डूबे। परन्तु यमुनाजी को अपनी इज्जत का, अपने प्रेमावतार परमात्मा का भी ख्याल है। बाढ़ का पानी वसुदेवजी को डुबाने में असमर्थ है! यह कैसा आश्चर्य है! उसे बाढ़ का पानी कहो या यमुनाजी के प्रेम की बाढ़ कहो, उसने वसुदेवजी को डुबोया भी नहीं, और वसुदेवजी के सिर पर जो आनंदकंद सच्चिदानंद है उसके चरण छुये बिना चुप भी नहीं रहती। उछलती है फिर सँभलती है।

आनंद भी आपके जीवन में उछलता है, सँभलता है। 'मेरा-तेरा', लोक-लाज डूब न जाये, इसकी भी चिन्ता रहती है, फिर उछलता है। जब तक साधक आनंद के चरणस्पर्श नहीं कर लेता तब तक उसकी उछलकूद चालू ही रहती है।

कंस उस बालिका को मारता है। वह कन्या कंस के हाथों से छटक जाती है अर्थात् अहंकारी के पास शक्ति आती है तो उसके पास टिकती नहीं। उसका मनमाना काम करती नहीं। अहंकारी की शक्ति छटक जाती है।

आनंदस्वरूप श्रीकृष्ण समझ गये कि यमुना उछलकूद मचाती है। वसुदेव को डुबाने से तो डरती है और मेरे चरण छुए बिना चुप भी नहीं रहती। तब उस नंदनंदन ने अपना पैर पसारा है, यमुनाजी को आह्लाद हुआ है और यमुनाजी तृप्त हुई हैं।

संतों का कहना है, महापुरुषों का यह अनुभव है कि निर्विकल्प समाधि में आनंद का प्रागट्य तो हो सकता है परन्तु आनंदस्वरूप प्रभु का पोषण तो प्रेमाभक्ति के सिवाय कहीं नहीं हो सकता। योगी कहता है कि मैं समाधि में था, बड़ा आनंद था, बड़ा सुख था, भगवद्मस्ती थी, मगर समाधि चली गई तो अब आनंद का पोषण कैसे हो? आनंद का पोषण बिना रस के नहीं होता।

वसुदेव-देवकी ने तो आनंद-स्वरूप श्रीकृष्ण को प्रगट किया लेकिन उसका पोषण होता है नंद के घर, यशोदा के घर। वसुदेव उन्हें नंद के घर ले गये हैं। यशोदा सो रही है। यशोदा के पालने में कन्या का अवतरण हुआ है। जहाँ प्रेम है, विश्रान्ति है वहाँ शक्ति का प्रागट्य होता है। जहाँ समाधि है वहाँ आनंद का प्रागट्य होता है।

हमारे शास्त्रकारों ने, पुराणकारों ने एवं ब्रह्मज्ञानी महापुरुषों ने हमारे चित्त की बड़ी सँभाल रखी है। प्रेम किसी एक आकृति, मूर्ति या फोटो में कहीं रुक न जाये। भगवान को मूर्ति में देखते-देखते अमूर्त आत्मा-परमात्मा तक पहुँचे, ऐसी व्यवस्था है कदम-कदम पर हमारे धर्म में।

वसुदेवजी आनंदकंद कृष्ण कन्हैया को यशोदा के पास छोड़ते हैं और शक्ति-स्वरूपा कन्या को ले आते

(अनुसन्धान पेज २३ पर...)

गुरु-शिष्य सम्बन्ध

जो शिष्य सद्गुरु का परित्याग करके अन्य का सेवन करता है वह नरक में पड़ता है। वृक्ष में जो फल लगता है, यदि वह उसी पर पकता है तो स्वादिष्ट होता है। यदि वह बिना पके ही जल में या पृथ्वी पर गिर जाय तो सूख अथवा सड़ जाता है। यद्यपि वृक्ष पर भी उसी जल और पृथ्वी से वृद्धि को प्राप्त होकर पकता है।

इसी प्रकार गुरु-शिष्य को समझना चाहिए।

वृक्ष सद्गुरु है, शिष्य फल है, ईश्वर जल है और शास्त्र पृथ्वी है। अभिमान करके गुरु का त्याग करना शिष्य का गिरना है। गिरा हुआ शिष्य ईश्वर और शास्त्र से पकता नहीं है - कल्याण को प्राप्त नहीं होता। गुरु के बिना शास्त्राभ्यास करने से अभिमान उत्पन्न होता है। अभिमान ज्ञान की प्राप्ति न कराके नरक में खींच ले जाता है।

निंद्य शिष्य मक्खी के समान है। मक्खी शरीर के उत्तम अंग को त्याग कर पीब के ऊपर ही आकर बैठती है। ऐसे ही निंद्य शिष्य गुरु के दोष के ऊपर ही आकर टिकता है, उनके अगणित गुणों को नहीं देखता। ऐसा खल पुरुष ईश्वर का भजन भी नहीं कर सकता इसलिए ईश्वर का कोपपात्र ही होता है। गुरुभक्ति करना उसे कठिन मालूम देता है। अन्य प्रतिमा आदिक की भक्ति तो सहज बन सकती है क्योंकि उसमें अपनी इच्छानुसार वर्तन करना होता है। प्रतिमा अथवा ईश्वर भक्त को रोक-टोक करने नहीं आते, जबकि गुरुभक्ति में तो अपनी इच्छानुसार चला नहीं जा सकता। जिसके पूर्व पुण्य का प्रभाव होता है वही योग्य शिष्य होकर गुरु की आज्ञा का पालन कर परम पुरुषार्थ को सिद्ध कर सकता है।

गुरु का वचन परमेश्वर का ही वचन है। परमेश्वर अपना ज्ञान प्राप्त कराने के निमित्त गुरु के द्वारा बोलता है। गुरु से ही परमात्मा की प्राप्ति होती है, परमात्मा से परमात्मा की प्राप्ति नहीं होती। इसलिए जो गुरुआज्ञा का पालन नहीं करता, वह गुरु और ईश्वर दोनों ही की आज्ञा का पालन न करने से नरकगामी होता है। जिसने गुरु के वचनों का उल्लंघन किया है, उसने वेद, शास्त्र, ऋषि-मुनि, सबके ही वचनों का उल्लंघन किया है।

प्रतिमा अवाक् है, गुरु वाणी वाला है इसलिए शिष्य को प्रथम गुरु का ही सेवन करना चाहिए और गुरु की भक्ति तन, मन और धन से करनी चाहिए।

> मक्खी शरीर के उत्तम अंग को त्याग कर पीब के ऊपर ही आकर बैठती है। ऐसे ही निंद्य शिष्य गुरु के दोष के ऊपर ही आकर टिकता है।

आजकल के स्वच्छंद शिष्य क्या करते हैं ? 'मेरा तो मेरे परिवार का और तुम्हारे में मेरा हिस्सा', ऐसे शिष्य शिष्यत्व को ही न पा सके तो सिद्धता कैसे पायेंगे ? स्वार्थ और शंका के पुतले को गुरु में न पूर्ण श्रद्धा है न पूर्ण समर्पण है। गुरु को अपने मन के अनुसार चलाना यह शिष्य के रूप में साक्षात् शैतान का काम है। वह शिष्य भी नहीं, इन्सान भी नहीं, शैतान है।

वह महापुरुषों की गहराई में छुपी धर्मनिष्ठा, 'बहु-जनहिताय' की भावना, सद्गुण, योग-ऐश्वर्य, ज्ञान-ऐश्वर्य, अंतःकरण को शीतल बनाने का सद्गुण नहीं देखता। जैसे चंद्रमा में कालिमा ढूँढ़ने वाले काले हृदय के लोग होते हैं ऐसे ज्ञान, ध्यान, आत्मनिष्ठा आदि सद्गुण न देखकर उनमें जो दोषदर्शन करते हैं वे काले अन्तःकरणवाले हैं। ऐसे ही निंदकों के लिए कबीरजी ने कहा है :

कबीरा निंदक ना मिलो पापी मिलो हजार।
एक निंदक के माथे पर लाख पापिन को भार॥

धन्य हैं वे लोग, जिनको आत्मवेत्ता गुरुओं में अटूट श्रद्धा है। रामकृष्ण परमहंस कहते हैं : ''यदि मेरे गुरु कलालखाने जाते हों तब भी मेरे गुरु मेरे लिए नंदराय हैं।''

जो शिष्य पूर्ण समर्पित होना चाहते हैं वे अपना तन, मन, धन गुरु को समर्पित करके शिष्य में से सत्शिष्य हो जाते हैं। ऐसों के कल्याण में कोई देर नहीं होती। ❀

हृषीकेश में गीता-भागवत सत्संग समारोह

विश्ववंदनीय सरिता माता गंगाजी के पावन तट पर बसे हुए हृषीकेश में स्थानीय भरत-मन्दिर में पूज्य बापू का अभूतपूर्व गीता-भागवत सत्संग समारोह संपन्न हुआ । स्कन्दपुराण के केदारखण्ड के अनुसार १७वें मन्वंतर में रैभ्य मुनि ने हृषीक (इन्द्रिय) को जीतकर ईश (इन्द्रियों के अधिपति विष्णु) को तपस्या करके प्रसन्न किया था। भगवान विष्णु ने हृषीकेश नाम से यहीं रहना स्वीकार किया । इस पावन तीर्थ में पूज्यश्री के अमृत वचनों का प्रतिदिन न केवल स्थानीय श्रद्धालुओं ने लाभ लिया वरन् देश के कोने-कोने से आये भक्तों ने, साधकों ने, संतों ने, त्यागी-रागी, जति-जोगियों ने भी पूज्यश्री की अमृतवाणी का रसपान किया ।

सब पूज्यश्री की स्नेह-सरिता में नहाए और अपने साधन-भजन में, नियम-निष्ठा में, भक्ति-ज्ञाननिष्ठा में और आत्मप्रेम की अमृतधारा में उस एक ब्रह्म के सुख में सुखी और संतुष्ट हुए। इन बारिश के दिनों में सत्संग के कार्यक्रम के वक्त हृषीकेश योग वेदांत सेवा समिति ने बारिश में भी श्रोता सत्संग सुन सकें ऐसा शामियाना बनाया था । शामियाना तो भरा रहा लेकिन बाहर लोग छाता लेकर चालू बरसात में भी इस अलख के औलिया को श्रद्धा-भक्ति से सुनते रहे। हृषीकेश में आयोजित पूज्य बापू का सत्संग 'न भूतो न भविष्यति' की उक्ति को चरितार्थ कर गया । भागवत कथा का श्रवण करने आये हुए हजारों श्रद्धालुओं को पूज्यश्री ने जीवन में श्रद्धा की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए कहा :

''सत्यस्वरूप को समझने और साक्षात्कार करने के लिए श्रद्धा, तत्परता और संयम से लगना ही जीवन है। जीव को अपने ब्रह्मस्वरूप से मिलाने का कार्य केवल श्रद्धा के बल से ही संभव है। श्रद्धाविहीन मनुष्य पशु के समान होता है।''

> रैभ्य मुनि ने हृषीक (इन्द्रिय) को जीतकर ईश (इन्द्रियों के अधिपति विष्णु) को तपस्या करके प्रसन्न किया था। भगवान विष्णु ने हृषीकेश नाम से यहीं रहना स्वीकार किया ।

यजुर्वेद के मंत्र 'व्रतेन दीक्षामाप्नोति...' पर व्याख्या करते हुए पूज्य बापू ने कहा :

''जीवन में श्रद्धा के साथ यदि कोई व्रत भी हो तो जीवन में निखार आ जाता है क्योंकि व्रत से जीवन में दीक्षा, दीक्षा से दक्षता, दक्षता से श्रद्धा और श्रद्धा से सत्य का साक्षात्कार अर्थात् आत्मज्ञान प्राप्त होता है। अतः जीवन में श्रद्धा अति आवश्यक है। गीताकार श्रीकृष्ण भी कहते हैं : 'श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्।' श्रद्धा के साथ मनुष्य के जीवन में जो अश्रद्धा लिप्त होती है, वही सत्य संकल्प के फलित होने में बाधक होती है। अन्यथा, श्रद्धा के बल से तो जड़ वस्तु भी आज्ञा पालने को तैयार रहती है।''

गंगाजी के बारे में बतलाते हुए पूज्यश्री ने कहा :

''गंगाकिनारे बसे हुए हृषीकेश में भगवान स्वयं ऋषि स्वरूप में विराजे हैं। भगीरथ राजा अपने तप के बल से गंगाजी को पृथ्वी पर लाये थे, इस कारण इसका एक नाम भागीरथी भी पड़ा है। श्रद्धालुओं के गंगाजी में अपने पाप, रोग, शोक छोड़ जाने से गंगाजी अशुद्ध हो जाती है लेकिन जब ब्रह्मज्ञानी संत स्वयं गंगाजी में गोता लगाते हैं तो गंगाजी भी पवित्र हो जाती है। यह गंगाजल की शुद्धता का माहात्म्य है कि आज वर्षों बाद भी वह यथावत् पवित्र और शुद्ध है।''

सनातन धर्म की व्याख्या करते हुए पूज्य बापू ने कहा : ''सनातन धर्म का ईश्वर सिर्फ मंदिर-मस्जिद में ही मौजूद नहीं वरन् कण-कण में विराजमान है इस-लिए सनातन धर्म का ईश्वर विलक्षण कहा गया है। सनातन धर्म किसी ईश्वरीय पुत्र का आदेश नहीं है।

जब-जब प्राकृतिक आपदायें आती हैं तब मनुष्य साधन खोजकर मुक्त हो जाता है। लेकिन जब प्रकृति ने मनुष्यों के लिए जन्म-मृत्यु रूपी आपदा की रचना की तो मनुष्य मोक्षमार्ग का ज्ञान

देने वाले आत्मवेत्ताओं की शरण में जाना भूल गया, तभी जीव के जन्म-मृत्यु का चक्र जारी है। भोगी और योगी में सिर्फ यही अंतर है कि एक नश्वर संसार के लिए मजदूरी करता है तो दूसरा शाश्वत सुख के लिए युद्ध करके मुक्त हो जाता है।

सांसारिक पदार्थों का सुख आरम्भ में अमृत-तुल्य प्रतीत होता है परन्तु अंत में विष के समान परिणाम देता है। आत्मसुख को त्यागकर संसार के पदार्थों में मन लगाने पर ही दुःख-पीड़ा का आगमन होता है। सुख की लालच और दुःख के भय से ही अन्तःकरण मलिन होता है। जब चित्त से राग-द्वेष की निवृत्ति होती है तब अन्तःकरण की शुद्धि के लिए कोई अन्य उपाय नहीं खोजना पड़ता। वैज्ञानिक कहते हैं कि जो शुद्ध प्रेम से भरे हैं उनकी दृष्टि मात्र से अन्तःकरण पवित्र होने लगता है। आज मनुष्य का अन्तःकरण शुद्ध नहीं हो पाता क्योंकि उसमें सांसारिक मान्यताओं की जंजीरें पड़ी हैं। इन मान्यताओं को उखाड़ने के लिए भगवदाकार वृत्ति बनावें।''

> **जीवन में 'निर्भयता' जो निर्भीक स्वरूप नारायण का चिन्तन करने से, 'निश्चिन्तता' अपने इष्ट पर दृढ़ विश्वास रखने से और 'प्रसन्नता' जो विषम परिस्थितियों में चित्त को सम रखने से आती है, अति आवश्यक है।**

पूज्य बापू ने जीवन के सर्वांगीण विकास की कुँजी बतलाते हुए कहा :

''जीवन में 'निर्भयता' जो निर्भीक स्वरूप नारायण का चिन्तन करने से, 'निश्चिन्तता' अपने इष्ट पर दृढ़ विश्वास रखने से और 'प्रसन्नता' जो विषम परिस्थितियों में चित्त को सम रखने से आती है, अति आवश्यक है। इन्द्रियगत ज्ञान मनुष्य को विषयाकर्षण की ओर, बुद्धिगत ज्ञान परिणाम क़ी ओर परन्तु आत्मज्ञान जीवन्मुक्ति की ओर ले जाता है। इन्द्रियज्ञान का आदर करने से ही जीवन पाशविक बनता जा रहा है। प्रज्ञा को पुष्ट करने के लिए इन्द्रियाकर्षण से बचना जरूरी है।

प्रत्येक अवस्था में भगवत्कृपा की समीक्षा करने से जीव सुखी रहता है। भगवत्कृपा की प्रतीक्षा नहीं वरन् समीक्षा करना चाहिए।

कर्मवाद के बारे में आपने बताया :

''भोगी सुख-दुःख का कारण वस्तु, व्यक्ति और परिस्थिति को मानता है, कर्मवादी सुख को पुण्य का और दुःख को पाप का फल मानता है जबकि भगवान का भक्त सुख-दुःख को ईश्वरीय कृपा समझकर भगवदकृपा में आनंदित रहता है, सम रहता है। वह सोचता है कि सुख देकर भगवान हमारा विषाद मिटा रहे हैं, दुःख देकर हमारी आसक्ति मिटा रहे हैं। भगवान कितने दयालु हैं !

प्रेमलक्षणा भक्ति जब परिपक्व होती है तब भगवत-साक्षात्कार होता है। सांसारिक चर्चा राग-द्वेष बढ़ाती है जबकि भगवत-चर्चा से राग-द्वेष क्षीण होता है, भगवत-प्रेम प्रगट होता है।

इन्द्रियगत ज्ञान और इन्द्रियों के आकर्षण में आने से एवं धर्मविहीन भोग से रोग और आपदाएँ आती हैं। योग से संकल्पबल बढ़ता है। ज्ञान से ब्रह्म-साक्षात्कार होता है, अपने और परमात्मा के बीच की खाई मिटती है, हृदय में ब्रह्मसुख छलकता है, मन-बुद्धि में विलक्षण लक्षण प्रगट होते हैं और साधक जीते जी मुक्त हो जाता है, देह में रहते हुए ही विदेही होता है। राजचन्द्र ने ठीक कहा :

देह रहते जिनकी दशा होती देहातीत।
उन ज्ञानी के चरण में हों वन्दन अगणित॥

❀

> साधना द्वारा जो साधक अपने वीर्य को ऊर्ध्वगामी बनाकर, ऊर्ध्वरेता होकर योगमार्ग में आगे बढ़ते हैं वे कई प्रकार की सिद्धियों के मालिक बन जाते हैं। ऐसा ऊर्ध्वरेता पुरुष ही परमात्मा को पा सकता है, आत्म-साक्षात्कार कर सकता है।

संतवाणी

मधुरं मधुरेभ्योऽपि मंगलेभ्योऽपि मंगलम्।
पावनं पावनेभ्योऽपि हरेर्नामैव केवलम्॥

परमात्मा का नाम मधुर से भी मधुर है, पावन से भी पावन है और सब मंगलों से भी अधिक मंगलकारी है। हरिनाम की मधुरता, मांगलिकता, पवित्रता के विषय में हम लोग सुनते हैं, मानते हैं, जानते हैं। फिर भी हमें आंतरिक अनुभूति तब तक नहीं होती जब तक साधना के रास्ते पर तीव्रता से गति प्राप्त नहीं की।

आद्य शंकराचार्य श्वेताश्वतर उपनिषद के भाष्य में कहते हैं कि जिनके पाप निवृत्त हुए हैं, जिनके दोष जल गये हैं वे ही परमात्मा के रस की अनुभूति कर सकते हैं।

वैश्वानल रूप से जठरा में उस परमात्मा की ही सत्ता से प्राण-अपान की धौंकनी से हमारे चतुर्विध अन्न - खाद्य, पेय, लेह्य और चोष्य हजम होते हैं। मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट-पतंग, वनस्पति और लताओं में भी पाचन-शक्ति की सत्ता उस परमात्मा की है।

जब तक विशुद्ध चैतन्य स्वरूप की अनुभूति या उसके रसास्वाद को नहीं पाता तब तक मनुष्य दुःख देनेवाले जगत में ही उलझता रहता है। अपने को नहीं जानता, बड़प्पन को नहीं खोजता इसलिए बाहर की वस्तुओं से बड़ा होने की लालच में चक्कर काटता ही रहता है। अपने अंतर जगत की महत्ता को नहीं जानता इसलिए बाहरी महत्ता बनाने के लिए बुद्धि से न जाने क्या-क्या क्रूर कर्म भी करता रहता है और अंत में कहीं का नहीं रहता।

आद्य शंकराचार्य कहते हैं कि जिनके पाप निवृत्त हुए हैं, जिनके दोष जल गये हैं वे ही परमात्मा के रस की अनुभूति कर सकते हैं।

ऐसा एक किस्सा है अरब देश का।

अरब के सम्राट ने अरबों रूपये लगाकर एक स्नानागार बनवाया। उसमें चमकीले पत्थर, हीरे और रत्न जड़कर उसे अतीव सुन्दर बनाया। उस स्नानागार में ऐसी करामात की किं एक चाबी घुमायें तो फव्वारा घूमने लगे और फव्वारे में ऐसी विचित्रता थी कि बस, वह तो देखते ही बनती थी। उस स्नानागार में ऐसी मणियाँ लगी थीं कि उसमें एक आदमी जाये तो उसे अपने हजार-हजार प्रतिबिम्ब दिखें, स्नान करे तो हजारों-हजारों व्यक्ति उसके साथ स्नान कर रहे हैं ऐसा उसमें भासे। कोयल, मैना, तोता और मोर आदि ऐसे ढंग से बनाये मानो सच्चे हों। फव्वारे की चाबी घुमायें तो मोर अपना टहुंकार करे, कोयल अपनी किल्लोल करे, मैना अपना स्वर दे। इतना ही नहीं उन पक्षियों के मुँह से आम का इत्र निकले, मोर के मुँह से हिना का इत्र निकले, तोते के मुँह से मोगरे का इत्र निकले। केवड़े, गुलाब, चमेली आदि के इत्रों की खुशबू के फव्वारे भी थे। वह नरपति दिन में चार बार स्नान करता था, उन्हीं फव्वारों के नीचे। अरब के सम्राट ने अपनी आंतरिक सूक्ष्म सुख की इच्छा को स्नानागार में पूरी करने की कोशिश की।

जब तक जीव को अपनी आत्मा में सुख नहीं दिखता तब तक वह न जाने कितने लोगों का शोषण करके, कितना धोखा करके, कितने लोगों को कोसता है? परन्तु आखिर तो सुख ही चाहता है। सुख के लिए प्राणी न जाने कितना-कितना कूड़-कपट करता है? उसने सब कूड़-कपट कर लिये। हीरे-जवाहरात से मंडित स्नानागार में वह सुख मानता था। उसे गर्व था कि इतना बढ़िया स्नानागार और किसीका नहीं होगा, ऐसे इत्रों से कोई नहीं नहाता होगा। अपने बड़प्पन का लोगों को पता चले, इसलिए उसने उदारता दिखाई कि प्रजाजन भी इसे देख सकते हैं। केवल दिन के चार समय स्नानागार खुला रहेगा। सम्राट

नहाकर निकलेंगे उसके बाद आम जनता उसे देख सकती है ।

अंतर में उसे यह वासना थी कि लोग देखें और मैं बड़ा हूँ, सुखी हूँ, ऐसा कहें । भीतर से वाहवाही सुनने की आकांक्षा थी और बाहर से उदारता दिखाने का ढोंग था । लोग आयें और स्नानागार देखकर प्रशंसा करें । राजा ने ऐसी व्यवस्था की कि लोग क्या कहते हैं यह छुपकर सुना जा सके । उनकी बातें सुनकर वह बड़ा मजा लेता था । यह मजा कान को सुनाने का मजा है और अहं को पोषित करने वाला मजा है ।

'तुम बड़े धनवान हो, तुम्हारा घर बढ़िया है, तुम्हारा स्नानघर बढ़िया है, तुम्हारी ऑफिस बढ़िया है, तुम्हारी गाड़ी बढ़िया है, तुम्हारे कपड़े बढ़िया हैं, तुम्हारे झेवर बढ़िया हैं...' ये बातें सुनने के लिए तुम न जाने कितना-कितना परिश्रम उठाते हो ? बाद में मिलते हैं कानों के द्वारा सिर्फ कुछ शब्द और वे शब्द अहंकार का सर्जन करते हैं, आत्मा की खबर नहीं देते । अज्ञान को बढ़ाते हैं, ज्ञान के द्वार नहीं खोलते ।

इस प्रकार की खबरें सुनकर राजा का अहं और पुष्ट होता गया । उसे पता ही नहीं कि मेरे इस अहंकार को पोसने में कितने ही लोगों का रक्त इसमें शोषित किया गया होगा, कितने ही मजदूरों का शोषण किया गया होगा और कितने ही मूक प्राणियों - बैलों, हाथी, घोड़े, गधों का शोषण किया गया होगा ? इस बात पर उसकी नजर ही नहीं जाती थी ।

एक व्यक्ति स्नानागार नहीं बना सकता । एक व्यक्ति कह दे कि मेरे लड़के को मैंने एल.एल.बी. बनाया तो यह गलत बात है। कोई कह दे कि मैं चार्टर्ड अकाउन्टेन्ट बन गया हूँ तो यह गलत बात है । तुमने कइयों का सहयोग लिया होगा । पढ़ाने वालों का सहयोग लिया होगा, कागज, पेन-पेन्सिल, बेन्च बनाने वाले व्यक्तियों का सहयोग लिया होगा । अगर कोई व्यक्ति कह दे कि मैंने यह काम किया है तो वह ऊपर-ऊपर से भले ही कह दे, गहराई से देखें तो वह अकेला कुछ भी नहीं कर सकता । उसके साथ न जाने क्या-क्या जुड़ा है ।

सूर्य की कृपा तो चाहिए, वसुंधरा की कृपा चाहिए, जल-तत्त्व की कृपा चाहिए, तेज-तत्त्व की कृपा चाहिए, वायु की कृपा चाहिए, साथ में समाज की कृपा भी चाहिए । इतना होने के बाद अगर व्यक्ति ठीक से अपने मन-बुद्धि का उपयोग करेगा तो उन्नत होगा । यदि मन-बुद्धि का उपयोग ठीक से नहीं किया तो उन्नत नहीं होगा । मन-बुद्धि का उपयोग करके जगत में कई गुजर गये, लेकिन मन-बुद्धि का सदुपयोग करके उस मूल चैतन्य के तरफ नहीं गया तो अरब के सम्राट जैसा हाल होता है ।

अरब का सम्राट ऐसी जगह पर बैठता है कि लोग जो वाहवाही करते, उसे सुनकर फूला न समाता । गाँव-गाँव से तो क्या, देश-देशान्तर से लोग आते उसके स्नानागार को देखने के लिए । सब उसकी प्रशंसा भी बहुत करते ।

फव्वारे की चाबी घुमायें तो पक्षियों के मुँह से आम का इत्र निकले, मोर के मुँह से हिना का इत्र निकले, तोते के मुँह से मोगरे का इत्र निकलें।

एक दिन कोई सूफी फकीर अरब पहुँचे । उनकी मधुर वाणी से लोग आकर्षित होने लगे । उनकी हाजरी मात्र से लोगों के संकल्प और विकल्प कम होते । उनकी निगाहों में जो आ जाते उन्हें खुदा की, मालिक की कुछ याद आती, कुछ अहंकार-रहित होने लगते । प्राणी जितना अहंकार-रहित होने को राजी हो जाता है उतना ही उसे आत्मसुख मिलता है और जितना अहंकार को सजाने में लग जाता है उतना ही विकारी सुख का गुलाम होता है । भक्त के सुख में और भोगी के सुख में, साधक के सुख में और संसारी के सुख में इतना ही अंतर है कि संसारी का सुख सरकने वाली चीजों पर आधारित है, जो उसे दु:ख देती हैं । भक्त का और साधक का सुख परमात्मा पर आधारित है जो उसे परम पद का दान करता है ।

कमला नेहरु आनंदमयी माँ के पास जाती थी । वे मनौती मनाती रहती थी कि हमारे पंडितजी जवाहरलाल नेहरु आनंदमयी माँ के चरणों में आकर बैठें और थोड़ा ध्यान करें, ऐसे दिन कब आएँगे ? कमला नेहरु गंगा में,

कभी-कभी नाव में एक आसन से बैठकर, एकतान होकर माला जपती थी। आनंदमयी माँ के पास जाकर परमात्म-प्रसाद में थोड़ा गोता मारती थी। आनंदमयी माँ ने उनको एक सोने का कड़ा और काली रुद्राक्ष की माला दी थी। कमला उसे खूब संभालकर रखती थी। वे महात्मा गाँधी से भी आनंदमयी माँ की प्रशंसा करती थी। महात्मा गाँधी ने जमनादास बजाज को आनंदमयी माँ के पास शांति पाने के लिए भेजा। जमनादास बजाज को बहुत शांति मिली। कमला नेहरु चाहती थी : ऐसे दिन कब आएँगे कि हमारे पंडितजी माँ के नजदीक जायें। उनकी उपस्थिति में तो पंडितजी नहीं जा पाये लेकिन कमलाजी के संकल्प चौदह वर्ष के बाद फले और जवाहरलाल नेहरु माँ के पास गये।

महात्मा गाँधी ने जमनादास बजाज को आनंदमयी माँ के पास शांति पाने के लिए भेजा। जमनादास बजाज को बहुत शांति मिली।

एक क्षण के लिए अखण्ड सुख मिल जाये तो उससे हजारों क्षणें जुड़ी हुई हैं। एक क्षण अगर आप निरहंकारी सुख की झलक पा लें तो आप जब चाहें निर्दुःख हो सकते हैं और निरामय के द्वार पर पहुँच सकते हैं। जब तक उस अखंड सुख के साम्राज्य में आप नहीं पहुँचे, तब तक आपको शब्दों से पूरा संतोष नहीं होगा। जैसे भौतिक पदार्थों से जीव को पूर्ण सुख नहीं मिलता, ऐसे ही शब्दों से भी पूर्ण सुख या पूर्ण अनुभूति नहीं होती। शब्दों के बाद अगर आप साधन करके कुछ अनुभूति प्राप्त करते हैं, एक क्षण के लिए भी आपको अनुभूति हो गई, एक झलक भी आपको मिल गई तो आप को योग की सच्चाई का विश्वास हो जायेगा। आत्मा-परमात्मा की सच्चाई का आपको एहसास हो जायेगा। एक क्षण भी आपको वह अखण्ड सुख का कुछ एहसास हो गया फिर आप आसानी से यात्रा कर सकते हैं।

एक क्षण अगर आप निरहंकारी सुख की झलक पा लें तो आप जब चाहें निर्दुःख हो सकते हैं और निरामय के द्वार पर पहुँच सकते हैं।

आपका मन बड़ा धोखेबाज शत्रु भी है और बड़ा मित्र भी है। शत्रु इसलिए है कि आपको विश्रांति नहीं लेने देता, धोखे में डालता रहता है। दस दिन पहले जो गलत काम किया, जो भोग भोगा और पछताया फिर अभी कहता है कि फिर से थोड़ी मजा ले लूँ। दो घण्टे पहले जो बीड़ी या सिगरेट पिया और फेंक दिया, थूक दिया, अभी सोचता है कि फिर सिगरेट जलाऊँ। हजार-हजार बार ठोकरें खाई, दुःख का एहसास किया फिर भी वहीं ले जाता है। इसलिए वह बड़ा शत्रु है। उस मन को अगर एक क्षण के लिए अखण्ड सुख की झलक मिल जाये तो वही मन आपका ऐसा मित्र होता है कि आगे चलकर प्रकृति पर पूर्ण विजय पाने की योग्यता भी आपको दे देता है। प्रकृति के सब बंधन काटकर, प्रकृति के प्रभावों को अपने पैरों तले कुचल कर आप परब्रह्म परमात्म-स्वरूप में जाग सकते हो, इतना सहयोग भी यही मन करता है।

गाय कभी गाली नहीं देती, पेड़ कभी झूठ नहीं बोलता लेकिन पेड़ पेड़ ही रहता है, गाय गाय ही रहती है, कुत्ता कुत्ता ही रहता है। मनुष्य झूठ भी बोलता है, गाली भी देता है, चोरी और मुकद्दमा भी करता है, परन्तु उसे अगर सत्संग मिल जाये, सद्गुरु का सान्निध्य मिल जाये और सत्संग के द्वारा साधन करने की युक्ति जान ले और उस साधन तथा सद्गुरु की कृपा से एक अखण्ड सुख की झलक मिल जाये तो वही मनुष्य नर में से नारायण बन जाता है। वह अपना उद्धार तो करता ही है, अपने संपर्क में आने वालों का भी उद्धार करता है।

अरब के उस सम्राट ने इत्र छिड़कते हुए पक्षियों के द्वारा और लोगों की वाहवाही के द्वारा सुख मनाने की कोशिश की। उस नगर में कोई फकीर आये। फकीर की धीरे-धीरे ख्याति होने लगी और लोग धीरे-धीरे उन फकीर दरवेश के नजदीक भी आने लगे। वहाँ किसीने जिक्र किया :

''महाराज ! आप इस देश में आये हैं तो

यहाँ का स्नानागार देखने जैसा है।''

बाबा ने कहा : ''स्नानागार जिससे देखा जाता है, वास्तव में तो वह देखने जैसा है।

स्नानागार में स्नान करने वाले भी एक दिन चल बसेंगे। स्नानागार भी एक दिन गिर जायेगा। ऐसे अनंत-अनंत संसार पैदा कर-करके जिसने लीन कर दिये फिर भी जो एकरस है, जिससे सब लखा जाता है उस अलख को पहचानने की जरूरत है।''

आपका मन बड़ा धोखेबाज शत्रु भी है और बड़ा मित्र भी है। शत्रु इसलिए है कि आपको विश्रांति नहीं लेने देता, धोखे में डालता रहता है।

बाबाजी ने यह बात पूरी की इतने में किसी दूसरे ने कहा : ''स्वामीजी ! यह सब ठीक है। आप की बात सच्ची है, लेकिन वह देखने लायक है।''

संसार से आकर्षित लोग भी तो कथा में होते हैं।

बाबाजी को कई लोगों ने आग्रह किया। बाबाजी के सत्संग का कार्यक्रम पूरा हुआ। उस गाँव से रवाना होने वाले थे। बोले - ''ज्यादा आग्रह करते हो तो चलो।''

सम्राट ने अपनी प्रशंसा सुन-सुनकर तो सुख लिया था लेकिन वह चाहता था कि मेरी प्रशंसा भी चिरंजीवी हो जाये। इसलिए वहाँ एक किताब रख दी ताकि वहाँ आने वाले जाने-माने प्रसिद्ध व्यक्ति इसके बारे में कुछ लिख जायें।

मनुष्य प्रशंसा का इतना भूखा हो जाता है कि वह चाहता है कि कोई हमारे लिए कुछ बढ़िया कहे और वह किताबों में लिखा रहे। हम मर जायें उसके बाद भी लोग गाते रहें, पढ़ते रहें। जब तक लोकेश्वर से प्रीति नहीं और लोकेश्वर की मधुरता का अनुभव नहीं तब तक यह लोकेषणा बनी रहती है।

ऐसी ही वित्तेषणा होती है। 'इतना और... थोड़ा और... थोड़ा और धन हो जाए...'

मैंने सुनी है एक कथा :

सिकंदर पहुँचा गोरखनाथ के पासः ''बाबाजी ! जब मैं चला था यूनान से तो डायोजीनीस महाराज ने कहा था कि गंगाजल ले आना और भारत का कोई संत साथ में ले आना। गंगाजल तो मिल जायेगा लेकिन संत तो आप हैं, चलिए।''

सिकंदर चकित हो गया और बोला : ''महाराज ! आखिर यह सब क्या है ?'' महाराज बोले : ''होगी तेरे जैसे किसी अभागे की खोपड़ी।''

गोरखनाथ बोले : ''मैं नहीं आता हूँ।''

वह बोला : ''कुछ चाहिए तो ले लो महाराज।''

गोरखनाथजी ने उसका अहंकार उतारने के लिए अपनी विद्या के बल से उनके पास जो खोपड़ी का खप्पड़ था उसे दिखाकर बोले : ''अच्छा मुझे इसमें भिक्षा भर दो।''

वह बोला : ''यह इतना-सा, जरा-सा बर्तन ! महाराज ! मैं सिकंदर हूँ सिकंदर।''

गोरखनाथ बोले : ''तू इतना तो भर दे।''

सिकंदर बोला : ''अभी इसको आटा दाल से क्या भरना ? सिकंदर के द्वार पर इतना-सा भिक्षा पात्र ! चलो, मोतियों से भर देता हूँ।''

मोतियों की दो-चार मुट्ठी डाली लेकिन वह खोपड़ी भरी नहीं। और चार-पाँच मुट्ठी डाली फिर भी भरी नहीं। तिजोरी खाली होने लगी, दूसरी तिजोरी के द्वार खोले, तीसरी के द्वार खोले। वह देखता जा रहा है। सिकंदर चकित हो गया और बोला : ''महाराज ! आखिर यह सब क्या है ?''

महाराज बोले : ''होगी तेरे जैसे किसी अभागे की खोपड़ी जो इतना-इतना मिलने पर भी नहीं भरी। पक्षियों को देख, आज खाते और मजे से किल्लोल करते हैं। कल की परवाह नहीं फिर भी उनकी कल बढ़िया जाती है। मनुष्य के पास सामान सौ दिन का है, सौ महिने का है, सौ साल का है जबकि पता पल का भी नहीं है। फिर भी 'खपे, खपे, खपे...' में अपने को खपा देता है। जितनी ये भौतिक चीजें ज्यादा उतनी उपाधि ज्यादा।''

न करे नारायण ! अगर २५ हजार वाले

की आमदनी १० हजार रूपये हो जाये तब वह अपने को कितना दरिद्र महसूस करेगा ! एक बार बिनजरूरी आवश्यकताएँ बढ़ाने की आदत पड़ जाती है फिर आदमी उन आदतों के चक्र में चक्कर काटता ही रहता है । अपने से जिसके पास कम धन है, कम साधन हैं उसको छोटा मानता है । अपने से जिसके पास ज्यादा साधन हैं उसको बड़ा मानता है । जिसके पास अपनी बराबरी के साधन हैं उसको बराबरी का मानता है और अपने से कम साधन वाला, बराबरी के साधन वाला और बड़े साधन वाला - इन तीनों में जो एक का एक आत्मा है उधर की नजर चुका देता है । तुच्छ चीजों के कारण ही बड़ा-छोटा और बराबरी का मानता है ।

चाहे कोई कितना ही इत्र से नहा ले और कितना ही अपने को इत्र में डुबाये रखे लेकिन उस चैतन्य परमात्मा का संबंध जब टूट जायेगा तब उनके शरीरों से वही बदबू आयेगी ।

बाबाजी उस विश्वविख्यात स्नानागार के दीदार करके आये । किताब खोल दिया गया । बाबाजी सुप्रसिद्ध संत थे । कर्मचारी ने कहा :

''महाराज ! सम्राट ने यह एक सुन्दर चीज बनवायी है । यह देशवासियों को तो प्रसन्न करती ही है, परदेश से भी लोग इसे देखने आते हैं । महाराज ! आपको यह कैसा लगा यह लिख दीजिए ।''

महाराज तो ब्रह्मज्ञानी संत थे, एक से जुड़े थे, अर्थात् सत्य-स्वरूप परमात्मा से अभिन्न हुए थे । उन्होंने लिखा :

''स्नानागार की चमकदमक बिल्कुल अद्वितीय है, इसमें सुन्दर-सुन्दर चमकीले पत्थर लगाये गये हैं । उन पत्थरों को लगाने के पीछे कितने अबोध जीवों का खून चूसा है, वह दिख रहा है । इन चमकीले हीरे-जवाहरात के पीछे कई मासूम बच्चों का और अनाथ जीवों का शोषण दिखाई दे रहा है । इत्र छिड़कते हुए पक्षियों के शिल्प, पक्षियों की किल्लोल एवं सुगंध के पीछे मुर्देपन की दुर्गन्ध की खबरें आ रही हैं । करोड़ों-करोड़ों रूपये खर्च करके जो स्नानागार बनवाया गया है, वह प्रजा के लिए दर्शनीय चीज बनायी गयी है इस दावे में भी दंभ मालूम पड़ता है । 'मैंने बढ़िया बनाया' यह अहंकार पोसने की युक्ति ही दिखाई दे रही है । मुझे तो ऐसा लगता है कि दिन में चार बार जो लोग इत्र से स्नान करते हैं वे जब मर जायेंगे तब कब्र में से उनके मुर्दे की ऐसी बदबू आयेगी कि लोगों को नाक पर रूमाल रखना ही पड़ेगा ।

चाहे कोई कितना ही इत्र से नहा ले और कितना ही अपने को इत्र में डुबाये रखे लेकिन उस चैतन्य परमात्मा का संबंध जब टूट जायेगा तो उनके शरीरों से वही बदबू आयेगी जो मुर्दों में से आती है । बाहर के इत्र इस जीव को सुगंधित नहीं करते । जीव के लिए सच्चा इत्र तो ईश्वर का ध्यान है, परमात्मा का ध्यान है । इससे उसकी सच्ची सुगंध फैलेगी ।''

शबरी ने कौन-सा इत्र लगाया था ? मीरा कहाँ से इत्र लायी थी ? रोहिदास चमार के पास कौन-सा इत्र था ? सदना कसाई के पास कौन-सा इत्र था ? शुकदेवजी महाराज कहाँ इत्र के फव्वारे से नहाए थे ? एकनाथजी महाराज कौन-से स्नानागार में नहाए थे ? लेकिन उनकी आत्मिक सुगन्ध का कैसा विशुद्ध प्रभाव ! लोगों का शोषण कतई नहीं हुआ । उनके पास अपना और लोगों का कल्याण करने वाली वह आत्मिक सुगन्ध थी, आत्मिक इत्र था ।

बड़े खेद की बात है कि जो मनुष्यजन्म अपने और दूसरों के परम श्रेय परमात्मप्राप्ति में लगाना था उसके बजाय वे अपना अमूल्य जीवन हाड-माँस को चाटने-चूँथने में बरबाद कर रहे हैं । उनकी स्थिति दयाजनक है ।

परमहंसों का ॐ प्रसाद

ज्ञानी की महिमा

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा॥

'हे अर्जुन ! जैसे प्रज्ज्वलित अग्नि ईंधन को भस्ममय कर देती है वैसे ही ज्ञानरूप अग्नि संपूर्ण कर्मों को भस्ममय कर देती है।' *(गीता : ४.३७)*

ज्ञानी को कर्मों का लेप नहीं लगता क्योंकि ज्ञानरूप अग्नि से उनके सारे कर्म भस्मीभूत हो जाते हैं। ज्ञानी के पूर्व कर्म तो नष्ट हो ही जाते हैं, किन्तु उनके द्वारा जो नये कर्म होते हैं उनका फल पुण्य या पाप कुछ भी उन्हें नहीं मिलता। ज्ञानी कर्त्ता नहीं होते। ज्ञानी के द्वारा हुए पापकर्म, जैसे उनसे अनजाने में किसी जीव-जन्तु की हिंसा हो गई या मन, वचन, कर्म से उनसे कुछ हो गया तो जो उनकी निन्दा करता है वह पापकर्म का फल ले जाता है और जो उनकी सेवा करता है, उनका प्रशंसक है वह उनके पुण्यकर्म का फल ले जाता है। ज्ञानी पुण्यकर्म एवं पापकर्म दोनों से निर्लेप रहते हैं। तमाम प्रकार के सुख उनको आकर्षित नहीं कर सकते, क्योंकि उन्होंने परमसुख का अनुभव किया है।

'सः तृप्तो भवति।' वह आत्मसुख से तृप्त हो जाता है।

यदि आप मूलबंध करके ध्यान में बैठें तो मन ऊर्ध्वगामी होता है, पतन से बचता है। जालंधर बंध से बुद्धि का विकास होता है। ध्यान करते-करते जब ऊँचे केन्द्रों में आया जाता है, छोटे-छोटे सुख का आकर्षण घटता जाता है, तब ध्यान-जप प्रिय लगने लगता है, एकान्त प्रिय लगने लगता है। भीड़-भड़ाके से उपरामता होती जाती है। ज्यों-ज्यों ऊपर उठते जायेंगे, त्यों-त्यों हल्की चेष्टाओं में रुचि कम होती जायेगी।

जो ज्ञानी की निन्दा करता है वह पापकर्म का फल ले जाता है और जो उनकी सेवा करता है, उनका प्रशंसक है वह उनके पुण्यकर्म का फल ले जाता है।

साधक बुद्धिगत ज्ञान और इन्द्रियगत भोग के बीच झूलता रहता है। साधक को चाहिए कि वह विवेक का उपयोग करके बुद्धिगत ज्ञान का आदर करता जाये और इन्द्रियों के आकर्षण को हटाता जाये।

जितना-जितना साधक उन्नत होता है उतना-उतना उसके आसपास का वातावरण भी उन्नत होता जाता है। सत्संग मनुष्य को उन्नत कर देता है। सत्संग से अगर मन को उन्नत नहीं किया तो पतित विचारों में वह अपने आप गिरता जायेगा। सत्संग से मनुष्य विषय भोग-रहित सुख में प्रविष्ट होता है। अन्नमय कोष से हटकर प्राणामय, मनोमय, विज्ञानमय कोष में जब आता है तो परम सुख, परमात्मसुख, निरपेक्ष सुख क्रमशः बढ़ता जाता है और एक ऐसी अवस्था आती है कि पूर्ण सुख का उसको अनुभव हो जाता है। पूर्ण सुख का अनुभव होने से ज्ञानी के जो वर्तमान कर्म हैं वे तो ज्ञानाग्नि से जल जाते हैं किन्तु प्रारब्ध कर्म से उनकी शरीरयात्रा चलती रहती है। जैसे कि, तुमने मोटर चलायी, मोटर तो चली, अब तुमने इन्जिन बन्द कर दिया, लेकिन मोटर को जो गति मिली हुई है उसके फलस्वरूप इंजिन बंद होते हुए भी वह चलती रहेगी। क्रमशः उसकी गति कम होते हुए आखिर में खड़ी रह जायेगी। ऐसे ही ज्ञानी के जो प्रारब्ध कर्म हैं उन्हें पहले की जो गति मिली है उसके कारण ज्ञानी के शरीर का व्यवहार चलता रहेगा। प्रारब्ध कर्म का भोग खत्म होते ही ज्ञानी का यह पंचभौतिक शरीर पंचभूतों में लीन हो जाता है, सूक्ष्म शरीर सूक्ष्म भूतों में लीन हो जाता है और आत्मा तो परमात्मा से मिला हुआ ही है। ऐसे तो अज्ञानी का भी, जिसको आत्म-साक्षात्कार नहीं हुआ है, उसका भी आत्मा

परमात्मा से मिला हुआ है। घड़े के अन्दर जो आकाश है, वह आकाश-महाकाश से मिला हुआ है। ... लेकिन जो जानता है उसकी बलिहारी है।

सब घट मेरा सांईंया, खाली घट ना कोय।
बलिहारी वा घट की, जा घट परगट होय॥

जैसे अग्नि तो सब लकड़ियों में है लेकिन उस लकड़ी की बलिहारी है कि जिस लकड़ी से अग्नि प्रगट हो गई। प्रगट अग्नि ही अंधेरा मिटायेगी, ठंड मिटायेगी, रसोई बनायेगी, तृप्त करेगी। सत्-चित्-आनंद स्वरूप, परमसुख स्वरूप आत्मा जिसके अन्दर प्रगट हो गया उसकी बलिहारी है। सामान्य लकड़ी में जो अग्नि है उससे काम नहीं चलता, जहाँ अग्नि प्रगट होती है उससे काम होता है। ऐसे ही जिनमें परमात्मा प्रगट हुआ है उनके सान्निध्य से, पाप के पर्वत जिनके मस्तक पर हैं वे भी निष्पाप होने लगते हैं। वे अभक्त को भी भक्त बना देते हैं, नास्तिक को आस्तिक बना देते हैं और आस्तिक को परमात्म-सुख का अनुभव करा देते हैं। जगे हुए जो महापुरुष हैं उनके सान्निध्य में असाधक भी साधक होने लगते हैं, अवनति की ओर जाने वाले उन्नति की ओर चल पड़ते हैं। जैसे हिमालय में बर्फ गिरती है, तो उसकी शीतलता दूर-दूर तक पहुँचती है, ऐसे ही जो व्यक्ति आत्मलाभ से तृप्त हो जाता है उसकी उपस्थिति मात्र से ब्रह्मलोक तक के जीवों को लाभ होता है।

लोहे से लोहा कटता है, काँटे से काँटा निकलता है उसी प्रकार शुभ कर्मों से कर्मों का उच्छेद होता है। कर्म से आत्मज्ञान नहीं होता लेकिन सदियों से इकट्ठे हुए कर्म मल को हटाने के लिए शुभ कर्म, निष्काम कर्म अत्यंत आवश्यक है। तभी आत्मज्ञान के लिए भूमिका बनती है।

गुरु-वन्दना

गुरुदेव तुम्हें हैं अभिवन्दन।
तुम हरि विरंची और सदाशिव।
अर्पण तुमको है तन-धन-मन।
गुरुदेव तुम्हें हैं सदा नमन।
दे विद्या, दिव्य नयना।
शिष्यों का जीवन तुमने महान् किया।
सब कुछ देकर भी बदले में,
भगवन तुमने तो कुछ न लिया।
हम दे ही क्या सकते तुमको,
जब स्वयं हमारे दाता हो।
हम शिष्य असंख्यों के तुम ही,
जीवन-धन, भाग्य-विधाता हो।
हे परम पुरुष त्याग-मूर्ति !
हे कर्मयोगी निर्मल तन-मन !
निर्धन हो चाहे धनिक शिष्य,
तुम भेद रहित शिक्षित करते।
जीवन संघर्ष भुला निजका,
परहित में निरंतर रत रहते।
उन्नति शिष्यों की देख-देख,
गर्वित और हर्षित होते हो।
यदि शिष्य कोई कष्टित होवे,
तुम हार्दिक पीड़ित होते हो।
यह पवित्र नाता अपनाकर,
हे देव ! सींचते हो जन-मन।
अज्ञान मुक्त मानव को,
कर नित देते ज्ञानदृष्टि सुंदर।
भक्तों की पीड़ा हरने में,
लगता तुमको केवल पल भर।
आनन्द कन्द शुद्धि सौम्य वदन,
वेदान्त योग के सद्ज्ञानी।
अध्यात्म ज्ञान कर सुलभ,
सरल सद्शिष्यों के हो महादानी।
हे युगज्ञानी ! हे युगद्रष्टा !
अध्यात्म देव ! शत-शत है नमन।

- साधक हरेन्द्र जोशी
रतलाम.

संतों के संग का प्रभाव

डाकू रामखान भयानक वेश, डरावना चेहरा, क्रूर भुजाओं से युक्त, ऐसा था कि सामने आनेवाला व्यक्ति उसे देखते ही शक्तिहीन हो जाए। परन्तु महात्मा हरनाथ ने उससे न घृणा की, न चिन्ता की, न भय किया। वे आगे बढ़ते गये। डाकू रामखान पाँच ही कदम दूर रह गया था। वह भी न पीछे हटा, न आगे बढ़ा, फिर भी भीतर से संत की निगाह मात्र से इतना आगे बढ़ गया कि देखते-देखते ही उसकी यात्रा हो रही थी।

डाकू रामखान, महात्मा हरनाथ के आगे हाथ जोड़-कर कहता है :

''हे महात्मन् ! हे प्रभु ! हे चलते-फिरते भगवान ! मैं बहुत पापी हूँ, मैंने बहुत पाप किये हैं, कई खून किये हैं, कई निर्दोषों की संपत्ति हड़प ली है। संपत्ति छीनकर उनके हाथ-पैर तोड़ दिये या उन्हें यमपुरी पहुँचा दिया। मैंने कितने, कौन-कौन से पाप किये हैं वह मैं गिना नहीं सकता। हे महात्मन् ! मैं अनाथ ! जन्मों का भटका हुआ जीव आपकी शरण में हूँ। मुझे कोई रास्ता बताइए। मुझे शरण में स्वीकार कर लीजिए।''

महात्मा हरनाथ ने अपनी गुणातीत दृष्टि, पुण्य-पाप से परे, सुख-दुःख से परे, साम्य अवस्था की दृष्टि डाली। महात्मा के समक्ष डाकू रामखान ने अपने पापों का प्रायश्चित्त किया, अपनी गलती को स्वीकार किया। जो गुरु, संत, महा-पुरुष के आगे अपनी गलती, पाप को स्वीकार करता है उसके पाप तो कटते हैं, लेकिन जो उनके आगे गलती करता है, झूठ-कपट करता है या कुछ अंट-संट कहता है उसकी गलती और पाप खतरे का रूप ले लेते हैं, बहुत बढ़ जाते हैं।

अन्यक्षेत्रे कृतं पापं तीर्थक्षेत्रे विनश्यति।
तीर्थक्षेत्रे कृतं पापं वज्रलेपो भविष्यति ॥

और जगह किया हुआ पाप तीर्थक्षेत्र में जाओ तो मिट जाता है परंतु तीर्थक्षेत्र में किया हुआ पाप वज्रलेप हो जाता है।

तीर्थ बनता है महापुरुष की चरणरज से। भगवान या भगवत्प्राप्त महापुरुषों की चरणरज से वह जगह तीर्थ बनती है। ऐसे साकार महा-पुरुषों के आगे जो अपने पापों का प्रायश्चित्त करता है उनके पाप जल जाते हैं। जबकि ऐसे महापुरुषों के आगे जो कूड़-कपट, जिद्द, हठ करता है उसके पुण्य जल जाते हैं।

डाकू रामखान ने और तो कइयों को सताया परंतु एक महापुरुष को रिझा लिया। एक सत्पुरुष के आगे वह हृदयपूर्वक पापों का प्रायश्चित्त करते हुए, आँखों से गंगा-यमुना बहाते हुए, सच्चे हृदय से उन महापुरुष के चरणों को दूर से प्रणाम किया। 'मैं अधम हूँ, पापी हूँ। मुझे संतों के चरण छूने का अधिकार ही नहीं है' ऐसा सोचकर मन ही मन प्रणाम किया। उसका यह शुभ भाव देखकर जोगी हरनाथ मन ही मन खूब प्रसन्न हुए और मधुर वाणी में कहा :

''रामखान ! लोग तुझे डाकू कहते हैं, यह तेरी प्रकृति के गुणों का काम है। तू अपने स्वरूप को पहचानने के लिए भगवान के नाम की थोड़ी सहायता ले। प्राणायाम, ध्यान और

''रामखान ! लोग तुझे डाकू कहते हैं, यह तेरी प्रकृति के गुणों का काम है। तू अपने स्वरूप को पहचानने के लिए भगवान के नाम की थोड़ी सहायता ले। प्राणायाम, ध्यान और भगवन्नाम का सहारा, ये तीन चीजें तुझे शुद्ध कर देगी।''

भगवन्नाम का सहारा, ये तीन चीजें तुझे शुद्ध कर देगी। तू ध्यान की विधि मुझसे सीख ले। भगवन्नाम की दीक्षा ले ले। प्राणायाम करने की कला सीख ले। तेरे सारे पाप जल जायेंगे और तेरी छुपी हुई शक्तियाँ जाग्रत होगी वत्स !''

उस डाकू को संत हरनाथ वत्स कह रहे हैं, पुत्र कह रहे हैं।

''तुमने संत के आगे पापों का प्रायश्चित्त किया। अब तुम्हारे पाप रहे कहाँ ? पाप तो चले गये। अब पुण्यों को और प्रभु को प्रगट करना ही तेरा कर्त्तव्य है। 'मैं पापी हूँ, डाकू हूँ' यह चिन्तन मत कर। तूने पाप-ताप मेरे आगे रख दिये, वे सब प्रायश्चित्त की अग्नि में स्वाहा हो गये।''

हमारा दुर्लभ मनुष्य जन्म 'तू... तू... मैं... मैं...' में खपाने के लिए नहीं, दुर्लभ से दुर्लभ परमात्म-पद प्राप्त करने के लिए, जीवन्मुक्त बनने के लिए है।

साधु-संग अति पापी को भी पुण्यात्मा बना देता है। अति घृणित को भी श्रेष्ठ बनाने का सामर्थ्य रखता है। डाकू रामखान महात्मा से दीक्षित हुआ, उसे सच्चे प्रेम की एक निगाह मिली। उसने संसार के कँटीले मार्ग का त्याग करके संन्यास मार्ग को ग्रहण किया। गुरु महाराज के उपदेश के अनुसार वृंदावन में, श्रीकृष्ण की लीलास्थली में रहने लगा। थोड़े ही समय में उसकी सुषुप्त शक्तियाँ जाग्रत हुई। प्राणायाम आदि से क्रियाशक्ति में बढ़ोतरी हुई। भगवन्नाम से हृदय केन्द्र विकसित हुआ। गुरुमहाराज के सत्संग से ज्ञान का केन्द्र विकसित हुआ। तीन शक्तियों को विकसित करके संसार के तीन गुणों से पार होने लगा। एक सिद्ध संन्यासी हो गया।

कहाँ तो एक खूँखार डाकू और कहाँ एक सिद्ध संन्यासी ! मनुष्य में बहुत सारी संभावनाएँ हैं। बहुत सारी योग्यताएँ छिपी हुई हैं। प्रेम, सद्भावना, शुभकामना उसका मंगल करती हैं। संत का संग एवं कृपा बहुत कुछ कर जाती है।

❀

संतों का हृदय

उन्नावा जिले के किसी गाँव में स्वामी उग्रानन्द नाम के महात्मा ने घूमते-घामते गाँव के बाहर कोई खण्डहर में रात बितायी। गाँव में किसान लोग रहते थे। उनके बैलों की एक जोड़ी गुम हो गयी थी। किसान खोजने निकले। उन्हें उग्रानन्द मिल गये, ध्यान की मुद्रा में बैठे हुए।

किसानों ने सोचा कि यही चोर है और अभी ध्यान का ढोंग कर रहा है। उन्होंने तो न आव देखा न ताव। स्वामी उग्रानन्द को पकड़कर खूब मारा और अंत में उनका मुँह गोबर से लीप-पोत दिया। मारपीट कर उन्हें पकड़कर पुलिसथाने में ले गये। दैवयोग से उस गाँव में पी.एस.आई. वही था जो उन महात्मा का शिष्य था। अभी-अभी उसका वहाँ तबादला हुआ था। उसने देखा कि अरे, यह तो हमारे गुरुदेव ! किसानों की टोली उन्हें गोबर पोतकर पकड़कर ला रही है !

वह गुरुभक्त पुलिस अफसर तो यह देखते ही आगबबूला हो गया। उसने फौरन आदेश जारी किया : इन बदमाशों को सबको अंदर कर दो।

पचीस-तीस जो भी किसान थे सब बन्द कर दिये गये।

सबसे प्रथम गुरुमहाराज को गंगाजल से सब धुलाया, स्नान करवाया। उनकी पूजा की। 'हमारे ये साक्षात् शिवस्वरूप ब्रह्मस्वरूप स्वामी, उग्रानन्द भगवान और उनके साथ यह क्या हुआ ?' किसानों को क्या सबक देना उसके बारे में वह सोच रहा था उतने में ही स्वामीजी बोले :

''तू मेरा शिष्य है न ! तो मेरी आज्ञा का पालन कर। इन सबको छोड़ दे और मिठाई मँगवाकर खिला।''

जिनका हृदय मीठा है वे मिठाई ही देंगे। नाम तो उग्रानन्द है मगर हृदय में प्रेम की सरिता बह रही है। ऐसे पुरुष धरती पर चलते-फिरते दो हाथ-पैर वाले

भगवान हैं। तुम दो हाथ-पैर वाले हो तो तुम्हें भगवान भी दो हाथ-पैर वाला दिखेगा, मिलेगा, तभी काम होगा।

स्वामी विवेकानन्द कहते थे :

''सूर्यनारायण साक्षात् भगवान हैं, चन्द्रमा साक्षात् भगवान हैं, जल साक्षात् भगवान है परंतु उनसे तुम्हारी आत्म-उन्नति या आत्मरस प्रगट नहीं होता। इसलिए तुम्हें भगवदरस दिलाने वाले, तुम्हारे जैसे ही द्विपाद, द्विहस्त, द्विनेत्र वाले कोई महापुरुष ही भगवान होकर अपने भगवदभाव को प्रगट करे तभी तुम्हारी उन्नति होगी।''

धन्य हैं वे लोग जिन्हें मनुष्यरूप में भगवत्प्राप्ति किये हुए भगवत्स्वरूप संतों के प्रति अटूट श्रद्धा होती है।

'आपो देवता, सूर्यो देवता' - यह तो सच है परन्तु मनुष्य रूप में जो देवता है, उग्रानन्द स्वामी जैसा भगवान जब समाज में आता है तभी समाज को पता चलता है कि हम मकान, रोटी के चक्कर में, चौरासी के चक्कर खाने नहीं आये अपितु परमात्मप्राप्ति करके अपने सत-चित-आनंदस्वरूप को पाकर परमपद का अनुभव करने आये हैं। हमारा दुर्लभ मनुष्य जन्म 'तू-तू-मैं-मैं' में खपाने के लिए नहीं, दुर्लभ से दुर्लभ परमात्म-पद प्राप्त करने के लिए, जीवन्मुक्त बनने के लिए है। तमाम वासना और बंधनों को मिटाकर अमिट आत्मा-परमात्मा की प्राप्ति के लिए है। धन्य हैं वे लोग जिन्हें मनुष्यरूप में भगवत्प्राप्ति किये हुए भगवत्स्वरूप संतों के प्रति अटूट श्रद्धा होती है।

उग्रानंद स्वामी लाठी से पीटे गये, गोबर से पोते गये, फिर भी कहते हैं कि इनको मिठाई खिलाओ। कौन बड़े ? जिन्होंने गोबर से मुँह पोता वे किसान बड़े कि जिन्होंने बदले में मिठाई बँटवायी वे बड़े ?

थानेदार तो गुरु का भक्त था। उसकी जेब में जितने पैसे थे उसकी मिठाई मँगवायी गयी। गाँववालों को थानेदार के लिए इज़्ज़त हो गयी। बाबाजी के लिए भी आदर हुआ और वे लोग भक्त बन गये।

अगर बाबा भी थानेदार से उनको खूब पिटवाते तो गाँव वालों को न बाबा के लिए आदर होता, न भगवदभक्ति मिलती, उलटे नफरत होती।

मधुर व्यवहार हमेशा एक-दूसरे को नजदीक लाता है। क्रूरता, घृणा, कट्टरता के व्यवहार से एक-दूसरे की शक्तियाँ टकराकर एक-दूसरे को विनष्ट कर देती हैं। व्यक्ति के शरीर एवं उसके गुणों को मत देखो। उसकी गहराई में परमात्मा है उसका स्मरण करके उसे देखो तो बेड़ा पार हो जायेगा। उग्रानंद जैसों के चित्त में यही तो रहता होगा कि :

जिसीने दिया दर्द दिल
उसका खुदा भला करे।
आशिकों को वाजिब है कि
यही फिर से दुआ करें॥

❀

वास्तविक 'मैं'

ययाति राजा ने इतने पुण्य किये, इतना तप किया कि वे स्वर्गलोक गये। राजा इन्द्र के साथ एक आसन पर बैठने की उनकी योग्यता थी। वे ब्रह्मलोक भी जा सकते थे। किन्तु राजा इन्द्र नहीं चाहते थे कि ययाति उनकी बराबरी से बैठें। ययाति कभी ब्रह्मलोक में चले जाते, तो कभी स्वर्ग में आ जाते और इन्द्र के साथ एक ही आसन पर बैठते थे। दूसरे देवताओं से जब वे ऊँचाई पर बैठते थे तो अन्य देवताओं को भी थोड़ा-बहुत क्षोभ होता ही था।

स्वर्गलोक में भी क्षोभ तो होता ही है क्योंकि स्वर्गलोक के वासी सूक्ष्म 'मैं' में रहते हैं। हम लोग स्थूल 'मैं' में जीते हैं, राजस, तामस 'मैं' में जीते हैं, कभी-कभी सात्त्विक 'मैं' में आते हैं। वे लोग ज्यादा समय सात्त्विक 'मैं' में, सूक्ष्म 'मैं' में रहते हैं।

जब तक सूक्ष्म 'मैं' रहता है तब तक तो क्षोभ होता ही है। वास्तविक 'मैं' में जब आ जाये तब ऐसा क्षोभ नहीं होता। वास्तविक 'मैं' से मन की सारी कामनाएँ चली जाती हैं। सूक्ष्म 'मैं' भी निकल जाती है।

प्रजहाति यदा कामान् सर्वान् पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते॥

'हे अर्जुन ! जिस काल में यह पुरुष मन में स्थित संपूर्ण कामनाओं को भलीभाँति त्याग देता है और आत्मा से आत्मा में ही संतुष्ट रहता है उस काल में वह स्थितप्रज्ञ कहा जाता है ।'

(भगवदगीता : २.५५)

ययाति की प्रशंसा करते, उनको फुलाते हुए इन्द्र ने पूछा : ''तुमने ऐसा कौन-सा पुण्य और तप किया कि तुम्हें मेरे आसन पर बैठने का अधिकार है और ब्रह्मलोक में भी स्वेच्छानुसार जाने का अधिकार प्राप्त है ।''

तब ययाति ने कहा : ''मैंने इतना तप किया, इतना तप किया, इतने चान्द्रायण व्रत किये और कई वर्षों तक तो मैं पवनाहारी रहा था। तीस वर्ष तक तो मैंने निराहारी रहकर तपस्या की थी। मेरे तप की बराबरी कोई देव, गंधर्व, यक्ष, किन्नर भी नहीं कर सकता, यहाँ तक कि कोई ऋषि, मुनि भी नहीं कर सकते ।''

अब इन्द्र रुष्ट होकर बोले : ''ययाति ! तुमने अनजाने में अपने अहं को पोसा है और ऋषि-मुनियों का अपमान किया है। तुम्हारे पुण्य क्षीण हो गये हैं। तुमने अपने पुण्यों का बयान अपने ही मुख से किया है अतः तुम्हारा पुण्य-प्रभाव क्षीण हो गया है, तुम्हें यहाँ से गिराया जाता है ।''

तब ययाति ने कहा : ''मुझे स्वर्ग से भले गिरा दो, कोई हर्ज नहीं किन्तु ऐसी जगह पर गिराना जहाँ मुझे कोई श्रेष्ठ महापुरुषों की मुलाकात हो। संतपुरुषों की छाया में मुझे गिराना ।''

इन्द्र ने 'तथास्तु' कह कर ययाति को वहीं गिराया जहाँ प्रतर्दन, वसुमान, शिबि और अष्टक, ये चार ऋषि आत्मानंद में मस्त रहते थे। अपने असली 'मैं' को पहचान कर जीवन्मुक्त होकर रहते थे। ययाति राजा जब गिर रहे थे तो प्रतर्दन ऋषि ने देखा और तीन अन्य ऋषियों ने भी देखा कि ययाति गिर रहे हैं। उन्होंने ययाति से कहा :

''ययाति ! जैसे विश्वामित्र ने त्रिशंकु को थाम लिया था, ऐसे ही तुम चाहो तो हम तुम्हें भी थाम सकते हैं, अपने संकल्पबल से पुनः तुम्हें स्वर्ग में भेज सकते हैं ।''

''ययाति ! तुमने ऋषि-मुनियों का अपमान किया है। अपने पुण्यों का बयान अपने ही मुख से किया है अतः तुम्हारा पुण्य-प्रभाव क्षीण हो गया है, तुम्हें यहाँ से गिराया जाता है।''

तब ययाति ने कहा : ''नहीं प्रभु ! मुझे आपके चरणों में गिरने दीजिए ।''

जब ययाति नीचे पहुँचे तब ऋषियों ने पूछा : ''तुम्हें क्या चाहिए ?''

ययाति कहते हैं : ''अब मुझे स्वर्ग भी नहीं चाहिए, ब्रह्मलोक भी नहीं चाहिए । अब तो मुझे ऐसी चीज चाहिए कि जिसे पाने के बाद पुनः पतन न हो, पुनः गिरना न पड़े। ऐसा चाहिए कि जिसे भोगने के बाद नाश न हो ।''

तब ऋषिगण कहते हैं :

''भोगने के बाद नाश न हो, ऐसा चाहिए तो भोक्ता के अहंकार का ही नाश कर दो तो बाकी तुम्हारा असली 'मैं' प्रगट हो जायेगा ।''

इस प्रकार आत्मज्ञान का उपदेश पाकर ययाति परमपद को प्राप्त हुए ।

जगत का चिन्तन जितना करोगे, जितनी बातचीत करोगे उतना या तो राग बढ़ेगा या द्वेष बढ़ेगा । अज्ञानी के साथ यदि आप व्यवहार करोगे तो आपको जगत की सत्यता की दृढ़ता हो जाएगी । यह संसार मिथ्या है, स्वप्नवत् है । इसको सच्चा समझकर आप चाहे कुछ भी कर लो, चाहे कुछ भी पा लो । फिर भी जब ययाति जैसों का पतन हो जाता है तो अपनी क्या बात है ? इस जगत की सत्यता दृढ़ मत करो, यह मिथ्या है, सपना है। बचपन बीत गया, सपना हो गया, कल सपना हो गया, आज सपना हो रहा है । यह दुनिया हर क्षण सपने में सरकती जाती है । रामायण में भगवान शिवजी ने कहा है :

उमा कहऊं मैं अनुभव अपना।
सत्य हरि भजन जगत सब सपना॥

अतः अपने वास्तविक 'मैं' को पहचानना चाहिए। तीन प्रकार की 'मैं' होती है - एक स्थूल 'मैं', दूसरी सूक्ष्म 'मैं' एवं तीसरी वास्तविक 'मैं'। वास्तविक 'मैं' का जब तक साक्षात्कार नहीं होता, तब तक ईश्वर के वास्तविक स्वरूप का भी साक्षात्कार नहीं हो सकता, मुक्ति भी नहीं हो सकती। मायाविशिष्ट चैतन्य श्रीकृष्ण का दर्शन तो शकुनि जैसों को भी हुआ था। मंथरा, शूर्पणखा और धोबी को भी रामजी का दर्शन हुआ था। वास्तविक 'मैं' का साक्षात्कार करना ही पड़ेगा। चाहे आज करो या एक साल के बाद करो या एक जन्म के बाद करो या एक हजार जन्म के बाद... किन्तु साक्षात्कार करना ही पड़ेगा। दूसरा कोई उपाय नहीं है। चाहे पूरे विश्व में अपने नाम का डंका बजाओ, अपने नाम का नहीं, शरीर के नाम का डंका। शरीर को 'मैं' या 'मेरा' मानना यह बेवकूफी है। 'मैं' मानने से अहंता होती है, 'मेरा' मानने से ममता होती है। न तुम शरीर हो, न शरीर तुम्हारा है। वह तो पाँच भूतों का पुतला है। वह प्रकृति के तीन गुणों से संचालित होता है और उसमें सत्तामात्र तुम हो। प्रकृति को सत्ता देनेवाले तुम चैतन्य हो, अपने शुद्ध-बुद्ध वास्तविक 'मैं' को पहचानो।

पाया बड़ा सहारा...

सद्गुरु तेरी कृपा का,
कोई नहीं किनारा।
आया शरण तुम्हारी,
पाया बड़ा सहारा... ॥
भवफँद में फँसे हम,
विषयों में खप रहे थे।
मन में भरे थे कचरे,
माला भी जप रहे थे।
हरि की शरण लिए था,
हरि ने मुझे बचाया।
आया शरण तुम्हारी
पाया बड़ा सहारा ॥
गुरु के लिये विकल था,
खोजूँ तुम्हें कहाँ पर।
हमको भला पता क्या,
बैठे हो प्रभु यहाँ पर।
मन में तड़प ऊठी थी,
तुमने किया ईशारा।
आया शरण तुम्हारी
पाया बड़ा सहारा ॥
अपना लिया है प्रभु ने,
अपना मुझे बनाया।
वो सब मिला मुझे अब,
जो था कभी न पाया।
मिट्टी का था मैं गोला,
गुरु ने मुझे सँवारा।
आया शरण तुम्हारी
पाया बड़ा सहारा ॥
पकड़ा है हाथ मेरा,
बोले कि तू अभय हो।
जीवन सफल हुआ है,
साँई की मेरे जय हो।
परदा हटा नजर का,
दिखलाया ज्ञान सारा।
आया शरण तुम्हारी
पाया बड़ा सहारा ॥

- साधक ओमप्रकाश मिश्र
(कलकत्ता)

पू. बापू का 'जीवन रसायन'

आज का आदमी निराश है, दिग्भ्रान्त है, पलायनवादी बन गया है। पुरुषार्थ, संघर्ष और जिजीविषा की उद्दाम प्राणधाराओं का स्रोत उसका सूख गया है। ऐसे सघन अंधकार के समय में भगवद्-पाद संत श्री आसारामजी महाराज का 'जीवन रसायन' मानव समाज को एक नयी ऊर्जा, एक नया जीवन और ईश्वरोन्मुख होने का एक नया ध्रुव-लक्ष्य प्रदान करता है, कर रहा है। आवश्यकता इस बात की है कि हम भवरोगवैद्य पूज्य बापू के अलौकिक, अमोघ, त्रिताप शमनकारी 'जीवन रसायन' को प्राप्त करें, करायें और इसके माध्यम से मानव-समाज को एक नये रूपान्तरण की रोशनी में नहलायें और देखें कि आदमी भौतिक, दैहिक और आधिभौतिक तनावों से किस प्रकार मुक्त होकर दिव्य जीवन के सोपानों पर अपने कदम बढ़ाता है।

> ऐसे सघन अंधकार के समय में भगवद्-पाद संत श्री आसारामजी महाराज का 'जीवन-रसायन' मानव समाज को एक नयी उर्जा, एक नया जीवन और ईश्वरोन्मुख होने का एक नया ध्रुव-लक्ष्य प्रदान करता है।

पू. बापू के आर्ष वचनों के अमूल्य देवोपम संकलन 'जीवन रसायन' एक ऐसी महौषधि है, जिसके सेवन से विषयाक्रान्त तृष्णाकुल, विभिन्न वासनाओं के कीचड़ में सना, कराहने और खांसनेवाला आदमी बिल्कुल स्वस्थ, नये प्राण, नयी ऊर्जा, नयी शक्ति और एक नयी आशा से आपादमस्तक आपूर्यमाण हो जाता है - यह तथ्य भगवान धन्वन्तरि और अश्विनीकुमारों की साक्षी में उजागर हो गया है।

यहाँ आपके समक्ष प्रस्तुत हैं 'जीवन रसायन' की कुछ वानगियाँ :

बापू उवाच :

❀ जब ईश्वर से विमुख हो जाते हैं, तब हमें कोई मार्ग नहीं दिखता और घोर दुःख सहना पड़ता है। जब हम ईश्वर से तन्मय हो जाते हैं, तब योग्य उपाय, योग्य प्रवृत्ति, योग्य प्रवाह अपने आप हमारे हृदय में उठता है।

❀ जब तक मनुष्य चिन्ताओं में उद्विग्न रहता है, इच्छा एवं वासना का भूत उसे बैठने नहीं देता तब तक बुद्धि का चमत्कार प्रकट नहीं होता। जंजीरों से जकड़ी हुई बुद्धि हिल-डुल नहीं सकती। चिन्ताएँ, इच्छाएँ और वासनाएँ शान्त होने से स्वतंत्र वायुमण्डल का आविर्भाव होता है। उसमें बुद्धि को विकसित होने का अवकाश मिलता है। पंचभौतिक बंधन कट जाते हैं और शुद्ध आत्मा पूर्ण प्रकाश में चमकने लगती है।

❀ ओ सजा के भय से भयभीत होनेवाले आरोपी ! न्यायाधीश जब तेरी सजा का हुक्म लिखने के लिए कलम लेकर तत्पर हुआ हो, तब यदि एक पल भी तू परम आनन्द में डूब जाए, तो न्यायाधीश अपना निर्णय भूले बिना नहीं रह सकता। फिर उसकी कलम से वही लिखा जाएगा जो परमात्मा के साथ तेरी नूतन स्थिति के अनुकूल होगा।

❀ यदि आप संसार के प्रलोभनों एवं धमकियों से न हिलो तो संसार को अवश्य हिला दोगे। इसमें जो सन्देह करता है, वह काफिर है।

❀ रास्ते में चलते हुए जब किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति को देखो, चाहे वह इंग्लैण्ड का सम्राट हो, चाहे अमेरिका का प्रेसिडेण्ट हो, तब अपने मन में किसी प्रकार की ईर्ष्या या भय का विचार मत आने दो। उनकी शाहानी नजर को अपनी ही नजर समझकर मजा लूटो कि मैं ही वह हूँ। जब आप ऐसा अनुभव करने की चेष्टा करेंगे, तब आपका अनुभव सिद्ध कर देगा कि सब एक ही है।

❀ अविश्वास और धोखे से भरा संसार वास्तविक और सत्यनिष्ठ साधक का कुछ भी बिगाड़ नही सकता।

पू. बापू द्वारा मानव-कल्याण निमित्त आविष्कृत इस 'जीवन रसायन' से मनुष्य की आत्महीनता की ग्रन्थि गल जाती है, मनुष्य दैन्य और पलायनवाद के नागपाश से मुक्त होकर एक नयी भावभूमि पर कदम बढ़ाने लगता है और तभी एक नयी सृष्टि के जन्म की घड़ियाँ या कहिये कि 'भागवत-मुहूर्त' उपस्थित हो जाता है।

- आर. कुसुमाकर, इन्दौर।

वृंदावन के महंतश्री प्रयागमुनिजी को श्रद्धांजलि

वृन्दावन स्थित सिन्धी कुटिया के महन्त ८५ वर्ष की आयु में दि. १५ जुन '९३ को ब्रह्मलीन हुए। दि. १६ जुन को एक भव्य शवयात्रा से यमुनाजी में उन्हें जलसमाधि दे दी गई।

स्वामी प्रयाग मुनिजी ने गुरुदेव की आज्ञा से वृन्दावन में सिन्धी कुटिया के नाम से आश्रम का निर्माण किया था। आश्रम में स्थाई सेवा से अन्नक्षेत्र, संतसेवा, कथा-कीर्तन, छात्रावास आज तक चल रहे हैं। हर कुम्भ में सिन्धी कुटिया की ओर से अन्नक्षेत्र चलता है। प्रयाग मुनिजी ने आश्रम का सब कार्यभार भारत प्रसिद्ध परमसंत श्री आसारामजी बापू (अहमदाबाद) के चरणों में अर्पित किया।

अगले दिन श्रौत मुनिनिवास में श्री १०८ स्वामी रुद्रदेवानन्दजी की अध्यक्षता में एक स्मृति-सभा हुई जिसमें संत श्री आसारामजी बापू ने बताया :

''आज के युग में मरते समय अधिकांश लोगों को धन-सम्पत्ति की चिन्ता होती है कि मेरे बाद आश्रम का क्या होगा, मेरी महल-माड़ी का क्या होगा। परन्तु महान विभूति प्रयागराजजी को यह चिन्ता रहती थी कि सिन्धी कुटिया में चल रही सेवाओं का क्या होगा। उन्होंने इसी भावना से मुझ पर यह भार सौंपा। में अपने आपको बड़ा भाग्यशाली समझता हूँ जो मेरा सम्बन्ध श्री वृन्दावन धाम और यहाँ के संत महानुभावों और वृजवासियों से जोड़ दिया है।''

पू. बापू ने इन सब सेवाओं को चलाते रहने के लिए श्री नरेन्द्र ब्रह्मचारी की नियुक्ति की और सब संतों ने ब्रह्मचारी नरेन्द्र के सेवाकार्यों की सराहना की।

स्वामी रुद्रदेवानन्दजी ने श्रद्धांजलि अर्पण करते हुए बताया कि जीव और परमात्मा को जोड़नेवाला ही महात्मा कहा जाता है। और वे थे महात्मा प्रयागमुनिजी।

स्वामी जीवन्मुक्तोदासीन पुजारीजी ने बताया कि वे गत एक दो माह से जब जब भी प्रयाग मुनिजी के पास जाते तो उन्हें बीमारी की हालत में भी बड़ा प्रसन्न पाते थे। वे कहते थे कि आश्रम का सब प्रबन्ध हो गया है। आसारामजी को आश्रम सौंपने के बाद सेवाएँ चलती रहेगी इसी विश्वास के साथ मेरी सब चिन्ताएँ दूर हो गई हैं।

श्री बालकरामजी रामायणी ने बताया कि धाम की प्राप्ति ठाकुरजी की कृपा ही होती है।

श्री बाबा श्रीपादजी ने प्रयागमुनिजी को श्रद्धांजलि देते हुए कहा कि हम पर कृपा है कि आसारामजी बापू जैसे महान संत को वृन्दावन धाम ने हम लोगों से जोड़ दिया।

स्वामी हिन्तदासजी ने संस्मरण करवाए और प्रयागमुनिजी को एक सच्चा महात्मा बताया जिनके जीवन से हमें अनेक प्रेरणा मिलती रहेंगी।

श्री केशवदेव हरिमधुर ने सुझाव दिया कि प्रयागमुनिजी महाराज के संस्मरण एकत्रित कर उन्हें ग्रंथरूप में प्रकाशित किया जाय।

श्रद्धांजलि सभा में स्वामी चेतनमुनि, स्वामी सत्यानन्दजी, स्वामी सन्तोष मुनिजी, स्वामी शान्तानन्दजी, स्वामी श्यामपुरीजी (इन्दौर) ने अपने उद्‌गार प्रकट किये। स्वामी जगदानन्दजी, स्वामी वासदेवजी, स्वामी वेदान्त मुनिजी, स्वामी तुलसीदास रामायणी, स्वामी आत्मप्रकाशजी के दोनों भाई नूतनजी एवँ बरकतरामजी एवँ वृन्दावन के संतगण और इन्दौर से अनेक श्रद्धालु और महिलाओं ने श्रद्धांजलि अर्पण की।

श्री प्रयागमुनि के निर्वाण पर आश्रम में श्रीमद्‌भागवत का पाठ, गीता का पाठ एवं अन्य कई धार्मिक आयोजन किये गये। बाद में सत्रहवें दिन विशाल भंडारे का आयोजन किया गया जिसमें वृन्दावन के सभी आश्रमों के महन्त एवं अन्य सैंकड़ों संतों ने भोजन किया। महंतों को चादर, थाली-कटोरी एवं दक्षिणा दी गई। वहीं संतों को भी दक्षिणा एवं प्रसाद का वितरण किया गया।

मौन

पाश्चात्य मनोविज्ञान कहता है कि हमारे भीतर सब कीचड़ ही कीचड़ भरा है और उसीमें से सद्भावों का विकास होता है, परंतु हमारा जो पौरस्त्य मनोविज्ञान है उसके अनुसार तो हमारे हृदय के भीतर कीचड़ नहीं, हीरे भरे हुए हैं। जब हम बाहर का पर्दा हटा देते हैं तब ऐसे ऐसे हीरे, ऐसे ऐसे नये भावों का, ज्ञान-विज्ञान का उदय होता है जिसकी कोई सीमा नहीं है, जिसकी कोई मर्यादा नहीं है। एक बार हम स्वयं भी चमत्कृत हो जाते हैं। अरे ! मेरे हृदय में ऐसा भाव भरा था ! ऐसा विवेक भरा था ! ऐसा विज्ञान भरा था ! ऐसी प्रतिभा थी ! आज तक ये सब कहाँ सोये हुए थे ?

इन सुषुप्त शक्तियों को जागृत करने के लिए मौन हमारे जीवन में बहुत बड़ी वस्तु है और बहुत आवश्यक भी है। मौन का अर्थ होता है कि हम जीवन में निःसंकल्पता की ओर बढ़ें, हमारे जीवन में तमोगुण न हो, निषिद्ध-संकल्प न हो और विहित संकल्प भी न हो। निःसंकल्प होना माने अपने आपमें बैठना और इसका द्वार है मौन।

हमारे हृदय में जो भला-मानुष बैठा हुआ है वह जब देखता है कि हम सारी बातें दुनिया की ही कर रहे हैं और करते ही जा रहे हैं, बोलते ही जा रहे हैं... बोलते ही जा रहे हैं तब, वह बोलना बंद कर देता है, और जब हम चुप हो जाते हैं, तब वह बोलता है।

- स्वामी अखंडानंद सरस्वती

रत्नद्वय

सभी रोग की एक दवाई...

जगत में रोग एक ही है और इलाज (औषधि) भी एक ही है। चित्त से अथवा क्रिया से ब्रह्म को मिथ्या और जगत को सत्य जानना, एक यही विपरीत वृत्ति कभी किसी दुःख में प्रकट होती है, कभी किसी में और। हर विपत्ति की औषधि शरीर आदि को 'हैं नहीं' समझकर ब्रह्माग्नि में ज्वाला रूप हो जाना है। लोग शायद डरते हैं कि, दुनिया की चीजों से प्रेम किया जाय तो प्रेम का जवाब भी पाते हैं, परंतु परमेश्वर से प्रेम तो हवा को पकड़ने जैसा है, कुछ हाथ नहीं आता। यह धोखे का खयाल है, परमेश्वर के इश्क में अगर हमारी छाती जरा धड़के, तो उसकी एकदम बराबर धड़कती है और हमें जवाब मिलता है, बल्कि दुनिया के प्यारों की तरफ से मुहब्बत का जवाब तब ही मिलता है, जब हम उनकी तरफ से निराश होकर ईश्वरभाव ही की ओर झुकते हैं।

किसीने कहा : लोग तुम्हें यह कहते हैं। कोई बोला : लोग तुम्हें वह कहते हैं। कहीं हाकिम बिगड़ गया, कहीं मुकदमा आ पड़ा, कहीं रोग आ खड़ा हुआ। ओ भोले महेश ! तू इन बातों से अपने मन को मैला न होने दे। उद्विग्न मत हो। तू एक न मान। ब्रह्म बिना दृश्य कभी हुआ ही नहीं। चित्त का त्याग और ब्रह्मानन्द को भरकर तो देख, सब बलायें आँख खोलते-खोलते सात समुद्रों पार न बह जायें तो मुझको समुद्र में डूबो देना।

- स्वामी रामतीर्थ

अपने मन को मजबूत बना लो तो तुम पूर्णरूपेण मजबूत हो। हिम्मत, दृढ़ संकल्प और प्रबल पुरुषार्थ से ऐसा कोई ध्येय नहीं है जो सिद्ध न हो सके। 'भाग्य' शब्द मूर्खों का प्रचार किया हुआ है। पुरुषार्थ ही का नाम भाग्य है।

शिकायत पत्र

नाथद्वारा
दि. १४-६-९३

श्री योग वेदान्त सेवा समिति,
अहमदाबाद ।

हमें आपसे एवं पूज्य बापू से शिकायत है क्योंकि आपके यहाँ से बहनेवाला सत्संग एवं ज्ञान का अमृत 'ऋषि प्रसाद' इतना अलौकिक होता जा रहा है कि इसका इंतजार दो माह तक करना पड़ता है और नियत दिन आवे तबसे एजेन्टों के घर-दुकान पर चक्कर लगाने पड़ते हैं । कभी कभी यह आठ-दस दिन लेट हो जाता है तो ऐसा लगता है कि काश ! हमारे पंख होते तो नियत दिन से पहले ही प्राप्त कर लेते ।

जब यह पत्रिका प्राप्त हो जाती है तो जब तक दो बार, तीन बार इस अमृत को पी न लें तब तक चैन नहीं मिलता । चाहे दुनिया के काम पूरे न हों, चाहे घरवाले हमें अपने दैनिक काम के प्रति शिकायत करते हों, हमें किसी की चिन्ता नहीं रहती । चिन्ता रहती है तो बस, यही कि कहीं यह खत्म न हो जाए और यह प्रतिक्रिया होती रहती है कि जिसकी वाणी इतनी सुन्दर एवं आत्मशान्तिप्रद है वह कितना आत्मशान्ति का भण्डार होगा ! धन्य हैं वे भाई-बहन जो उनके सान्निध्य में रहते होंगे ! पू. बापू को मेरा शत शत नमन...!

- आर. के. दीक्षित
कैलास आयुर्वेदिक, नाथद्वारा (राज.)

सदस्यों के लिए आवश्यक सूचना

(१) सदस्यता का नवीनीकरण करते समय म.ओ. फार्म में, संदेशस्थान पर अपना पूरा पता, पिनकोड नंबर, ग्राहक नंबर एवं कब से सदस्यता का नवीनीकरण करना है, इसका उल्लेख अवश्य करें ।

(२) उ. प्र., राजस्थान, म. प्र., गुजरात एवं महाराष्ट्र में सेवाधारी के रूप में सेवा करने के इच्छुक साधक 'ऋषि प्रसाद' कार्यालय का सम्पर्क करें । पत्र व्यवहार करते समय किस क्षेत्र में वे 'ऋषि प्रसाद' के वितरण का कार्य करना चाहते हैं यह अवश्य लिखें ।

(३) किसी भी प्रकार की शिकायत करते समय अपना नाम व पूरा पता एवं ग्राहक नंबर अवश्य लिखें ।

(४) 'ऋषि प्रसाद' का सदस्य शुल्क केश, डिमाण्ड ड्राफ्ट अथवा म.ओ. के रूप में ही स्वीकार किया जाता है । चेक स्वीकार नहीं किये जाते ।

(अनुसन्धान पेज ४ से चालू...)

हैं । उसे जेल में देवकी के पास रख देते हैं । कंस आता है । कंस माना अहंकार । अहंकार देखता है कि यह तो बालक नहीं बालिका है । लेकिन बालिका है फिर भी इन्हीं की है, कैसे जीवित रखूँ ? कंस उस बालिका को मारता है । वह कन्या कंस के हाथों से छटक जाती है अर्थात् अहंकारी के पास शक्ति आती है तो उसके पास टिकती नहीं । उसका मनमाना काम करती नहीं । अहंकारी की शक्ति छटक जाती है ।

'मैं' बना रहा, अहंकार बना रहा तो शक्ति आयेगी मगर टिकेगी नहीं । शक्ति हाथ से छटक जायेगी । इसलिए हे साधक ! धन का अहंकार आये तो सावधान रहना । तेरे से बड़े-बड़े सत्ताधीश इस जहाँ से खाली हाथ गये । सौन्दर्य का अहंकार आये तब भी सावधान रहना । किसी भी बात का अहंकार आये तब सावधान रहना । अहंकार तुम्हें वासुदेव से दूर कर देगा, आत्मा-परमात्मा से दूर कर देगा ।

स्वप्नदोष, वीर्यस्राव, प्रदर आदि रोगों के लिए प. पू. गुरुदेव के व्दारा प्रयोजित उपाय

हम सभी का यह अनुभव है कि पूज्य बापू जब सत्संग करने व्यासपीठ पर आते हैं तब व्यासपीठ पर कई बार हाथ ऊँचे करके खड़े रहते हैं, उसके बाद हाथ ऊँचे रखकर ही उस जगह पर पाँच-सात बार कूदते हैं ।

पूज्य बापू का अनुसरण करके हम सब भी हाथ ऊँचे रखकर कूदते हैं । इससे हमारे प्राण ऊपर के केन्द्रों में आते हैं । फलतः हम अच्छी तरह से सत्संग सुन सकते हैं ।

जब प्राण नीचे के केन्द्रों में होते हैं तभी हमें काम, क्रोध, शोक, भय, चिंता, लोभ, मोह जैसे विकार ज्यादा सताते हैं । चाहे जैसा कामी मनुष्य हो, जो एक दिन भी पत्नी के बगैर न रह सकता हो या जिसे रोज वीर्यस्राव होता हो, हस्तमैथुन की आदत हो, बहनों को प्रदर रोग हो, उन्हें सुबह-दोपहर-शाम खाली पेट इस प्रकार हाथ ऊँचे रखकर खड़े रहना तथा हाथ ऊँचे रखकर ८-१० बार कूदना चाहिए । इससे अन्य विकारों में भी लाभ मिल सकता है ।

हमारी आँख की पुतली सदैव ऊपर होनी चाहिए । सो जायें तब हमारे हाथ ऊँचे अर्थात् नाभि से ऊपर रहना चाहिए । कामी मनुष्यों की आँख की पुतली एवं हाथ नीचे जाते हैं ।

विद्यार्थियों को भी पढ़ते और लिखते वक्त अपनी दृष्टि ऊपर रहे इस प्रकार पुस्तक-कापी रखना चाहिए । रामानुज प्रख्यात गणितज्ञ थे । वे हमेशा अपनी दृष्टि ऊपर रहे ऐसा ध्यान रखते थे । उनसे जब कोई प्रश्न पूछा जाता था तब उनकी नजर ऊपर रहती थी ।

भोजन बनने के तीन घंटे के अंदर खाने से, आलू, लाल-हरी मिर्च, चाय, कॉफी, बीड़ी, तम्बाकू, दारू, अफीम न लेने से और संभव हो तब तक अपने हाथ का बना भोजन खाने से वीर्यस्राव और प्रदर में लाभ होता है । रात्रि को जल्दी सोकर सुबह सूर्योदय के पूर्व स्नान करने से और रोज स्वच्छ, धुले हुए वस्त्र पहनने से सत्त्वगुण बढ़ता है, जिससे वीर्यस्राव, प्रदर में फायदा होता है ।

प्राणशक्ति और रविशक्ति

मनुष्य में दो प्रकार की शक्तियाँ होती हैं : एक प्राणशक्ति, दूसरी रवि शक्ति ।

रात्रि के बारह बजे से दिन के बारह बजे तक प्राणशक्ति का प्रभाव होता है जिसमें बुद्धि का, आध्यात्मिकता का विकास होता है । तुमने देखा होगा कि आर्कीटेक्ट, इन्जीनियर आदि बुद्धिजीवी लोग बारह से पहले कोई काम करेंगे तो उसमें उन्हें ज्यादा लाभ होगा । दोपहर के बारह बजे के बाद रविशक्ति का विकास होता है । मजदूर जैसे लोगों की रविशक्ति दोपहर के बाद बढ़ती है । रात्रि के बारह बजे से प्राणशक्ति बढ़ते-बढ़ते सुबह में निखरती है और ताजगी आती है । दोपहर के बारह बजे तक उसका जोर होता है । फिर दिन होते होते रविशक्ति बढ़ने लगती है और प्राणशक्ति क्षीण होने लगती है । शाम को सूर्यास्त के वक्त रविशक्ति और प्राणशक्ति सम हो जाती हैं । फिर रविशक्ति रात को बारह बजे तक बढ़ती जाती है ।

इस प्रकार रात्रि के बारह बजे से लेकर दोपहर के बारह बजे तक बौद्धिक विकास, आध्यात्मिक विकास और दिन के बारह बजे से रात्रि के बारह बजे तक स्थूलता की प्रवृत्ति होती है । अतः रात्रि को जितना हो सके उतना जल्दी सो जाएँ और प्राणशक्ति को बढ़ाने के लिये जितना जल्दी प्रभात काल में उठें उतनी आध्यात्मिक उन्नति ज्यादा अच्छी होती है ।

डायब्टीज के लिए विशेष माहिती

पूज्यश्री के अहमदाबाद आश्रम द्वारा संचालित 'धन्वंतरि आरोग्य केन्द्र' और सुरत आश्रम द्वारा संचालित 'सांई लीलाशाहजी उपचार केन्द्र' चल रहे हैं जिनमें प्राय: सभी रोगों पर आयुर्वेदिक चिकित्सा की जाती है।

विशेषरूप में डायब्टीज की आयुर्वेदिक जड़ीबुट्टियों से बनायी हुई दवाई का काफी लोगों ने लाभ उठाकर स्वास्थ्य लाभ प्राप्त किया है। 'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों के आग्रह को मान्य रखते हुए इस बार डायब्टीज की माहिती दी जा रही है।

सुरत आश्रम में सांई लीलाशाहजी उपचार केन्द्र इतवार और गुरुवार को ही चालू होता है।

अहमदाबाद आश्रम में धन्वंतरि आरोग्य केन्द्र का समय :

इतवार : सुबह में ९.३० से १२.३०

बुधवार : दोपहर १२.०० से २.००

(१) डायब्टीज के इलाज के लिए ऊपर लिखे हुए समय में ही आयें।

(२) डायब्टीज की दवाई दर्दी की नब्ज देखकर दी जाती है। इसलिए दर्दी का स्वयं आना अत्यंत आवश्यक है।

(३) यहाँ दिखाने आयें उसके ज्यादा से ज्यादा ५ से ७ दिन पहले का युरीन और ब्लड़ का रिपोर्ट भी साथ में लाना होगा।

(४) डायब्टीज के लिए नब्ज खाली पेट ही देखी जाती है। इसलिए नाड़ी दिखाने के पूर्व नास्ता या भोजन नहीं करें। चाय, दूध या प्रवाही पदार्थ ले सकते हैं।

ता.क. : 'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों को निवेदन है कि :

डायब्टीज की दवाई पार्सल या वी.पी. से नहीं भेजी जाती। आयुर्वेदिक चिकित्सा की माहिती के लिए पत्र के साथ अपना पता लिखा हुआ जवाबी कार्ड (रिप्लाय कार्ड) भेजना अनिवार्य है। इससे ही पत्रव्यवहार हो सकेगा। अन्यथा जवाब नहीं मिलेगा।

आन्तर-बाह्य आरोग्यता

आम के खटमिट्ठे रस में थोड़ी-सी सोंठ और सिंधव नमक मिलाकर खाना चाहिए। उससे मंदाग्नि दूर होती है, हाजमा बढ़ता है। ऐसे ही हरिनाम, हरिध्यान से आध्यात्मिक हाजमा बढ़ता है। खटमिट्ठे स्वभाव में सत्संग और संत आज्ञापालन मिलाने से हृदय मधुर होने लगता है और बुद्धि की मंदता मिटने लगती है।

बरसात की मौसम में मंदाग्नि का कोप होता है इसलिए खटमिट्ठे आमरस में सोंठ और सिंधव नमक मिलाकर खाना चाहिए। वज्रासन में बैठकर साँस को बाहर रोककर बीस से चालीस बार पेट को अंदर-बाहर करना चाहिए। इस प्रकार पाँच बार करें। इससे मंदाग्नि दूर होती है।

यह तो पेट की मंदाग्नि मिटी, परंतु बुद्धि की मंदता कैसे मिटे ? खटमिट्ठा स्वभाव परमात्मप्राप्ति कैसे करे ? उसमें साधना की सोंठ मिला दें, संयम-नियम का सिंधव नमक मिला लें। खटमिट्ठा स्वभाव भी परमात्मा को पाने में सफल हो जायेगा।

आम के रस में फिटकरी और नौसादर मिलाकर रात को सोते समय पेढू पर लेप करने से प्रदर और स्वप्नदोष मिटते हैं। ऐसे ही सोते समय जगदीश्वर को स्नेह और 'सोहं' का अभ्यास करते हुए सोने से जगत की सत्यता का दोष मिटता है। सोते समय अपने हृदय को हरिरंस का लेप कर दो, सोहं रस का, स्नेह का, 'आनंदोहं' की भावना का लेप कर दो और बाद में शयन करो। चित्त के पाप-ताप मिट जायेंगे।

सुबह में चार से आठ काजू शहद के साथ खाने से दिमाग की कमजोरी, विस्मृति मिटती है। यादशक्ति बढ़ती है। ऐसे ही सुबह-सुबह अंतःकरण चतुष्टय का आधार जो साक्षीस्वरूप है उसकी स्मृति करने से अपना अज्ञान मिटने लगता है, विस्मृति मिटने लगती है, परमात्मस्मृति जगने लगती है। ज्ञान और ध्यान मिलाकर अंतःकरण को सत्संग-सरिता में नहलाने से अंतःकरण की कमजोरी भी मिटती है, परमात्मा की स्मृति भी जगती है।

'आपका ऑपरेशन तो तीन दिन पहले हो गया...'

मेरे घर पर यदि कोई साधु-संत आते तो मेरे द्वारा उनका हँसी-मजाक होता था। मेरे इस असभ्य व्यवहार से मेरी धर्मपत्नी और माता-पिता के हृदय में खूब दुःख होता था। परन्तु मुझे आनंद और अभिमान होता था।

मेरा स्वभाव भी अत्यंत क्रोधी, नीच और स्वच्छंदी था। मेरे घर के सभी लोग मेरे इस स्वभाव से त्रस्त हो जाते और खूब दुःखी होते।

अमेरिका में एक अच्छे स्कॉलर के रूप में मेरी गिनती होती थी। अमेरिका से आने के बाद वापी में एक दवा के कारखाने में Testing and Research Laboratory Incharge के रूप में लम्बे समय तक काम करके उनसाठ वर्ष की उम्र में निवृत्त हुआ।

निवृत्त होने के बाद मुझे पहला हलका हृदयरोग का हमला हुआ। उसके दस महीने के बाद फिर दूसरा हमला हुआ। बम्बई के 'हिंदुजा हॉस्पिटल' में बताया। मेरी रिपोर्ट थी कि हृदय में ८५-९० प्रतिशत खराबी है और तत्काल ऑपरेशन (बाय-पास सर्जरी) करना पड़ेगा। मैंने ऑपरेशन करवाने का तय किया। अस्पताल में भर्ती हुआ। मृत्यु का भय खूब लगता था।

अस्पताल में बीमारों के साथ रहती हुई एक सिंधी माँजी को मेरे ऑपरेशन की खबर मिली। इसलिए वह मेरे पास आयी और बोली :

''बेटा! डरना नहीं, भगवान पर भरोसा रखना, सब कुछ ठीक हो जायेगा।''

पुस्तक बताकर माँजी ने कहा : ''ये संत आसारामजी पर सब छोड़ दो। ये संत बहुत दयालु हैं, श्रद्धा रखो। साँईं का स्मरण करो। 'हरि ॐ, हरि ॐ' करते रहो। सांईंगुरु सब संभाल लेगा।''

उन्होंने मुझे दो पुस्तकें... एक 'ईश्वर की ओर' एवं दूसरी 'मंगलमय जीवन-मृत्यु' दीं। मैंने दो बार पढ़ी। पुस्तकों में पू. बापू का फोटो था। पढ़कर आँख में आँसू आ गये। खूब पश्चात्ताप हुआ कि जीवन के उनसाठ वर्ष व्यर्थ बरबाद कर दिये। माँजी ने लगभग नौ बजे मेरे बिस्तर के पास आकर पूछा : ''पुस्तक पढ़ी ? कैसी लगी ?''

मैंने कहा : ''अच्छी है। देर हो गयी। जिंदगी बरबाद कर डाली। मरने का समय आ गया।''

माँजी बोली : ''मरना तेरे हाथ में है क्या ? सांईं गुरु पर भरोसा रखो, श्रद्धा रखो और 'हरि ॐ हरि ॐ' का जप करते रहो। सांईं गुरु सब संभाल लेगा।''

मेरे पास अब कोई दूसरा इलाज न था। आँखें बन्द करके पू. बापू का स्मरण करते-करते 'हरि ॐ' का जप चालू कर दिया। जप करते-करते मुझे नींद आ गयी।

दिनांक : २६-९-९१ की सुबह को, आश्चर्य की बात तो यह थी कि मन में जरा भी घबराहट या डर न था।

डॉक्टर आये : ''ऑपरेशन सात बजे करेंगे। आधे घंटे की देर है। भगवान को मानते हो तो इष्टदेव या गुरु का स्मरण करो।''

पुस्तक बताकर माँजी ने कहा : ''ये संत आसारामजी पर सब छोड़ दो। ये संत बहुत दयालु हैं, श्रद्धा रखो। सांईं का स्मरण करो। 'हरि ॐ, हरि ॐ' करते रहो। सांईंगुरु सब संभाल लेगा।''

मैंने पूज्य बापू का स्मरण करना शुरु किया। हरि ॐ का जप चालू ही था। फिर क्या हुआ मुझे कुछ पता नहीं है। कोई मुझे जगाने का प्रयत्न कर रहा था। मैंने आँखें खोलीं। पास में नर्स खड़ी थी। उसने पूछा :

"Uncle, How do you feel ? Are you feeling O.K. ?"

मैंने कहा : "I am perfectly alright. No problem."

मैंने कहा : ''मैं ठीक हूँ। आप कब मेरा ऑपरेशन करने जा रहे हैं ?''
डॉक्टर-नर्स हँसे और बोले : ''मिस्टर देसाई ! आपका ऑपरेशन तो तीन दिन पहले हो गया। ऑपरेशन सफल रहा।''

तुरंत ही उसने फोन करके डॉक्टर को सूचना दी कि पेशेन्ट होश में आ गया है। डॉक्टर आये और पूछा : ''कहो मिस्टर देसाई ! कैसे हो ?''

मैंने कहा : ''मैं ठीक हूँ। आप कब मेरा ऑपरेशन करने जा रहे हैं ?''

डॉक्टर-नर्स हँसे और बोले : ''मिस्टर देसाई ! आपका ऑपरेशन तो तीन दिन पहले हो गया। ऑपरेशन सफल रहा। कोई परेशानी नहीं है।''

मैंने पूछा : ''मेरा ऑपरेशन हो गया ?''

''हाँ।''

मुझे खूब आश्चर्य हुआ। तुरंत ही पू. बापू की छबि मेरी स्मृति में आयी। मेरी आँखों में आँसू आ गये। पू. बापू ने ही मुझे बचाया।

डॉक्टर ने कहा : ''ऑपरेशन से पूर्व आप गहरी नींद में थे। हमने आपको जगाने की कोशिश की। किन्तु फिर आपको एनेस्थेशिया दे दिया।''

मैंने मन में ही बापू का स्मरण करते हुए कहा :

''Bapu is great... Bapu is great... Bapu is great." (बापू महान हैं, बापू महान हैं, बापू महान हैं)

दस दिन के बाद मैं अस्पताल से घर आया। मन में पू. बापू का स्मरण और 'हरि ॐ' का जप चालू था। पू. बापू के दर्शन की खूब इच्छा थी। ऑपरेशन के एक महीने बाद वलसाड़ में बापू के सत्संग-समारोह के समाचार मिले। दर्शन की खूब इच्छा थी। पू. बापू के सुरत आश्रम में शिविर में बैठने की भी खूब इच्छा थी।

ऑपरेशन के तीन महीने बाद मैं और मेरी पत्नी सुरत मेरे बेटे के यहाँ गये। वहाँ सुरत आश्रम में शक्तिपात-साधना शिविर के समाचार मिले। मैंने आश्रम पर फोन किया। किसी साधक भाई ने फोन उठाया। मैंने कहा :

''शिविर में रहने की इच्छा है परन्तु ऑपरेशन के कारण बैठ नहीं सकता। शिविर भरने की खूब इच्छा है। आश्रम को कोई आपत्ति है क्या ?''

यह बात चल रही थी तभी बीच में किसी ने फोन पर बात चालू की : ''मैं आसारामजी बोल रहा हूँ। बोलो, क्या तकलीफ है ?''

मैं तो आश्चर्य में पड़ गया। मुझसे कुछ बोला न गया।

उन्होंने पूछा : ''शिविर में रहना है ? आओ, सब ठीक हो जायेगा।''

उन्होंने फोन रख दिया। मैंने मेरी पत्नी से बात की। उसे भी खूब आश्चर्य हुआ। उसने कहा : ''पू. बापू की हम पर कृपा है। शिविर में रहो।''

मैं अकेला ही शिविर में गया। बैठने-उठने की तकलीफ थी पर दो दिन कहाँ निकल गये, पता ही न चला। खूब आनंद हुआ।

उसके बाद मैंने दिसम्बर '९२ का शिविर भरा जिसमें २९-१२-९२ के दिन नामदान लिया और दूसरा शिविर मार्च '९३ में 'होली-शिविर' भरा, जिससे पू. बापू की कृपा से आज मैं पूर्ण रूप से स्वस्थ हूँ।

रोज जप, ध्यान, बापू के सत्संग की कैसेट, आसारामायण का पाठ, गुरुगीता आदि का पाठ, मैं नियमित रूप से करता हूँ। मेरे मन में ऐसा होता रहता है कि पू. बापू के आश्रम में थोड़े समय रहूँ तो वहाँ के सत्संग के पवित्र वातावरण के आंदोलनों का लाभ मिले।

पू. गुरुदेव की दया-कृपा । हरि ॐ... जय गुरुदेव ।

- कान्तिलाल गुलाबभाई देसाई
रामझरोखा, पहली मंजिल, वलसाड़।

'पू. बापू की वेधक दृष्टि पड़ी और मेरा जीवन बदल गया...'

मैंने १९८५ में पू. बापू का बड़ौदा में सत्संग सुना । उसके पहले के वर्षों में मैं खूब दारू पीता, माँस-मच्छी का आहार करता, व्यभिचारी भी था । बीड़ी, सिगरेट, भांग, गाँजा, अफीम, चरस आदि व्यसनों का भी आदी था । दारू पीने के कारण घर में, नौकरी में और बाहर झगड़े-टंटे तो चलते ही रहते थे । दादागिरी भी करता । इन सब दुर्गुणों से मेरा जीवन अधोगति की ओर बरबाद हो रहा था ।

ऐसे समय में परम पूज्य बापू का सत्संग-समारोह चालू हुआ । सत्संग में जाने से पूर्व मैंने एक प्याली दारू तो पेट में डाल ही दी थी । परन्तु मैं कथा-सत्संग में पहुँच गया । ३ घण्टे कथा में बैठा । नशा गायब हो गया । विचार बदलने लगे । शाम को सत्संग पूरा होते ही मैं पू. बापू के दर्शन नजदीक से करने के लिए रास्ते में प्रतीक्षा करने लगा । पू. बापू की गाड़ी आयी । बापू ने मेरे पास आकर, मेरे ऊपर एक वेधक और सूचक दृष्टिपात किया और उसी क्षण से मेरे तमाम व्यसन दुम दबाकर भाग गये । सत्संग में प्रीति बढ़ी । प. पू. बापू के प्रति श्रद्धा, भक्ति-भाव बढ़ने लगे । सचमुच पू. बापू की कृपा-दृष्टिमात्र से मेरा जीवन बदल गया ।

सत्संग में जाने से पूर्व मैंने एक प्याली दारू तो पेट में डाल ही दी थी । परन्तु सत्संग में पहुँच गया । नशा गायब हो गया । विचार बदलने लगे । पू. बापू ने मेरे ऊपर एक वेधक दृष्टिपात किया और उसी क्षण से मेरे तमाम व्यसन दुम दबाकर भाग गये ।

मंत्रदीक्षा से आध्यात्मिक अनुभूति

मैंने प. पू. बापू (संत श्री आसारामजी महाराज) के अहमदाबाद आश्रम में ध्यान योग साधना शिविर में प्रवेश पाया । प्रथम दिवस प. पू. बापू के सान्निध्य में सत्संग-कथा श्रवण और गीता-आत्मज्ञान वर्षा का अद्भुत लाभ मिला ।

दूसरे दिन उपवास करके मंत्रदीक्षा पाने के लिए बैठा... 'हरि ॐ ॐ गाये जा...' की धून चालू हुई । थोड़ी देर में प. पू. बापू उपस्थित हुए । हमने प्रणाम किया । मुझे पिछले दिन के दर्शन की अपेक्षा आज अलौकिक दिव्य दर्शन हुए । बापू का जैसे-जैसे दृष्टिपात बढ़ा, वैसे-वैसे उनकी दिव्य शक्ति का संचार मेरे शरीर पर होता हो, ऐसा मैं अनुभव करने लगा । शरीर के ऊपर रोम-रोम खड़े होने लगे । शरीर की उष्णता बढ़ने लगी । आँखों में भी दिव्य नशा छा गया ।

प. पू. बापू ने दीक्षा देने से पूर्व गुरु का अर्थ सविस्तार समझाया और जब गुप्त-मंत्र देने हमारे पास से गुजरे तब उनके दिव्य अलौकिक शक्तिपात से हमारे पाप-ताप, दुर्गुणों और व्यसनों को जलाकर भस्म कर दिया हो, ऐसा मुझे अनुभव हुआ । मंत्रदीक्षा से सत्-चित्-आनंद की झलक का भी अनुभव हुआ । मेरे आनंद का पार न रहा । गुरुदेव को कोटि-कोटि प्रणाम । कहाँ तो एक दारूड़िया और कहाँ आत्म-साक्षात्कार का पथिक साधक !

धन्य है सत्संग और धन्य हैं...

- एम. एम. राजपूत
१, विष्णुकुंज, गोत्री रोड़, वड़ोदरा।

सुख की लालच और दुःख के भय से अन्तःकरण अशुद्ध होता है। इनसे अपनेको बचाओ तो शुद्ध सुख और शुद्ध ज्ञान प्रकट होने लगेगा।

संस्था समाचार

शिष्यों के आत्मिक उल्हास, आह्लाद, समर्पण, सेवा, त्याग की भावनाओं को प्रेरित करनेवाला, जीवमात्र के वास्तविक कर्त्तव्य का स्मरण करानेवाला, गुरु-शिष्य के सम्बन्ध विषयक हिसाब लगाने के अवसररूप गुरुपूर्णिमा पर्व, अहमदाबाद के आश्रम में दिनांक २, ३, ४ जुलाई '९३ के दिनों में मनाया गया।

कई प्रकार की स्थायी प्रवृत्तियाँ एवं कार्यभार के साथ ही साथ ऐसे भव्य पर्व के आयोजन में भी विशेष व्यवस्था करने की थी किन्तु सेवा-भावना, त्याग और समर्पण के रंग से रंगे हुए सेवाभावी साधकों एवं भक्तों के सामूहिक पुरुषार्थ से सब कार्य सम्पन्न हो पाये। गाँव गाँव से, शहर शहर से, प्रत्येक प्रान्त से पधारे हुए असंख्य गुरुभक्तों, साधकों का आध्यात्मिक सम्मेलन तीन दिन के लिए आयोजित हुआ।

यहाँ आश्रम में कोई नौकर नहीं, कोई चाकर नहीं, कोई वेतनभोगी कर्मचारी नहीं। कोई आदेशपत्र नहीं कोई कानून नहीं। केवल आत्मीयता, श्रद्धा, गुरुकृपा का आन्तर अनुशासन। फलतः किसीको भी कोई कष्ट नहीं, कोई शिकायत नहीं। असुविधा का महत्त्व ही नहीं और सुविधा की आकांक्षा नहीं। सबके मुखकमल पर आत्मसन्तोष... दिव्य प्रेम... समर्पण की भावनाएँ...

सद्गुरुदेव की अमृतवाणी का लाभ तीन दिन तक मिलता रहा।

गुरुपूर्णिमा के दिन आश्रम में पूज्यश्री की व्यासपीठ से लेकर आश्रम का पूरा एप्रोच रोड़ गुरुदर्शन के इच्छुक साधकों भक्तों से खचाखच भर गया था। गांधीनगर हाइवे पर तो लक्झरी बस, टेम्पो, मेटाडोर, जीपकार, रीक्षा आदि विभिन्न वाहनों की लम्बी लम्बी कतारें लग गई थीं। कई भक्तों को गुरुदर्शन की लाइन में खड़े रहते हुए चार घण्टे लग जाते, कइयों को पाँच और छः घण्टे भी लग जाते, तब जाकर कहीं गुरुदर्शन के लिए नम्बर लगता था। लेकिन जब नम्बर लगता, पूज्यपाद गुरुदेव, पतितपावन, आत्ममस्त संतश्री, ब्रह्मनिष्ठ सत्पुरुष पूज्य बापू के दर्शन होते ही सारी थकान मिट जाती थी। वाणी, कलम या कैमरा इसका क्या बयान कर सकेगा ! यह तो लाबयान आनन्द, अतुलनीय कृपा-प्रसाद, अगम्य करुणा की सरिता में गोता लगाने का पर्व था। यह तो जिसने अनुभव किया उसीने जाना।

धरती सब कागज करूँ लेखिनी करूँ वनराजी।
सात समन्दर की स्याही करूँ गुरुगुन लिखा न जाई॥

दिनांक १८ जुलाई के दिन पूज्य बापू ने अग्नि एशिया के देशों में आध्यात्मिक प्रवास के लिए प्रस्थान किया। १८ जुलाई से ५ अगस्त तक बेन्कॉक, होंगकोंग, सिंगापुर, ताइवान, इन्डोनेशिया आदि देशों में पदार्पण किया।

दिनांक २ अगस्त रक्षाबन्धन के दिन पूज्यश्री ने जाकार्ता, इन्डोनेशिया से टेलिफोन पर अहमदाबाद एवं सुरत आश्रम में पूर्णिमा व्रतधारी साधकों के लिए सत्संग दिया।

दिनांक ६ अगस्त के दिन पूज्य बापू भारत में सुरत आश्रम में पधारे। दिनांक ७ अगस्त के दिन पूज्यपाद गुरुदेव ने सुरत में अनुपम टेक्षटाईल मार्केट में पावन पदार्पण किया और उनके श्रीमुख से सत्संग-वर्षा हुई।

दिनांक ८ से १० अगस्त के दौरान सुरत आश्रम में वेदान्त शक्तिपात साधना शिविर का आयोजन किया गया। सूर्यपुत्री तापी के तट पर कृष्ण-जन्माष्टमी उत्सव बहुत ही धूमधाम से मनाया गया। सुरत आश्रम में इस शिविर की तैयारियाँ पिछले एक महीने से जोरशोर से चल रही थीं। आश्रम में आरसीसी का पक्का रोड़ बनाया गया जिससे वर्षा के समय में भी कीचड़ का कष्ट न रहे। आश्रम में आने के लिए रेलवे स्टेशन एवं चोक से सीटी बसों की व्यवस्था की गई थी। ये बसें आश्रम तक आती थी।

सुरत आश्रम में एक प्राकृतिक उद्यान भी विकसित किया गया है। आठ साल पहले जहाँ उजड़े हुए खेत थे वहाँ आज प्राकृतिक वनराजी से मनोहर तीर्थस्थान बन चुका है। यहाँ बच्चों के लिए बालोद्यान भी सुविकसित किया गया है। हर गुरुवार एवं रविवार के दिन हजारों दर्शनार्थी यहाँ सुबह से शाम तक आते हैं। यहाँ गुरुवार एवं रविवार के दिन जलपान की व्यवस्था भी मिल

वृन्दावन के प्यारे दुलारे संतों महंतों के साथ पू. आसारामजी बापू... ब्रह्मलीन श्री प्रयागमुनिजी को श्रद्धांजलि... उनके सेवाकार्य के अपूर्ण मनोरथों को पूर्ण करने के लिए विचार-विमर्श...

अहमदाबाद आश्रम में, दि. १-७-९३ की शाम को भा.ज.पा. के प्रमुख श्री एल. के. अडवाणी पूज्यश्री के दर्शन-सत्संग से धन्यता महसूस करके स्नेहपूर्वक वन्दना करते हुए...

सिंगापुर एयरलाइन्स के जनरल मैनेजर एवं उनका परिवार पूज्य श्री गुरुदेव के आशीर्वाद प्राप्त करते हुए...

हेमकुण्ड गुरुद्वारा (हृषीकेश) के सिक्ख भक्तों के द्वारा पू. बापू का स्वागत...

सिंगापुर में शंखनाद से गीता-ज्ञानयज्ञ का शुभारंभ करते हुए पूज्यश्री...

सुरत में जन्माष्टमी के पर्व पर श्रीकृष्ण-जन्म पर तात्त्विक रसप्रद प्रवचन के श्रवण में तन्मय साधु-संत, साधक-भक्तजन एवं गोप-गोपियाँ...

जन्माष्टमी के पर्व पर सुरत आश्रम में मक्खन मिसरी मटकीफोड़ कार्यक्रम...

Registered with Registrar of Newspapers for India Under No. 48873/91